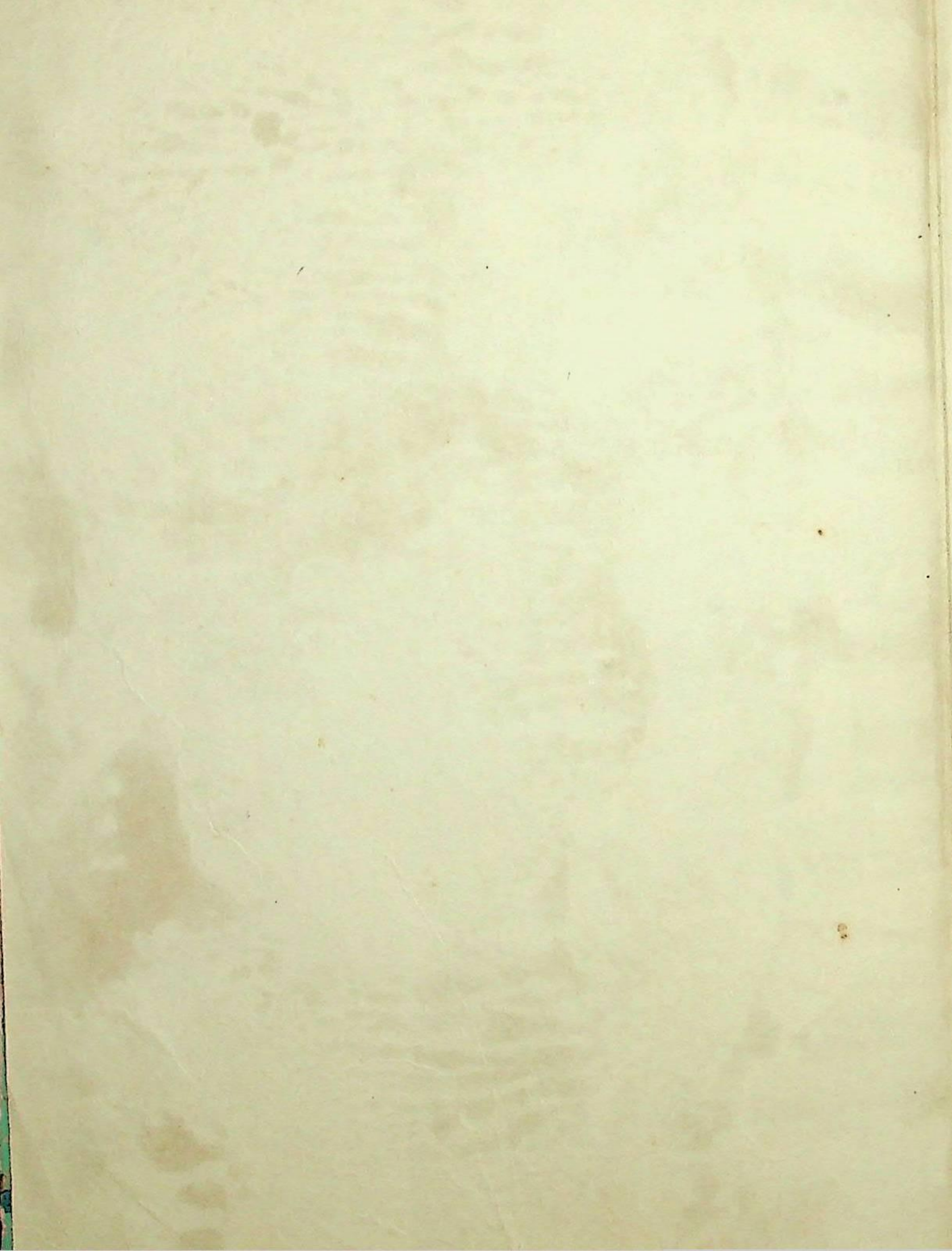
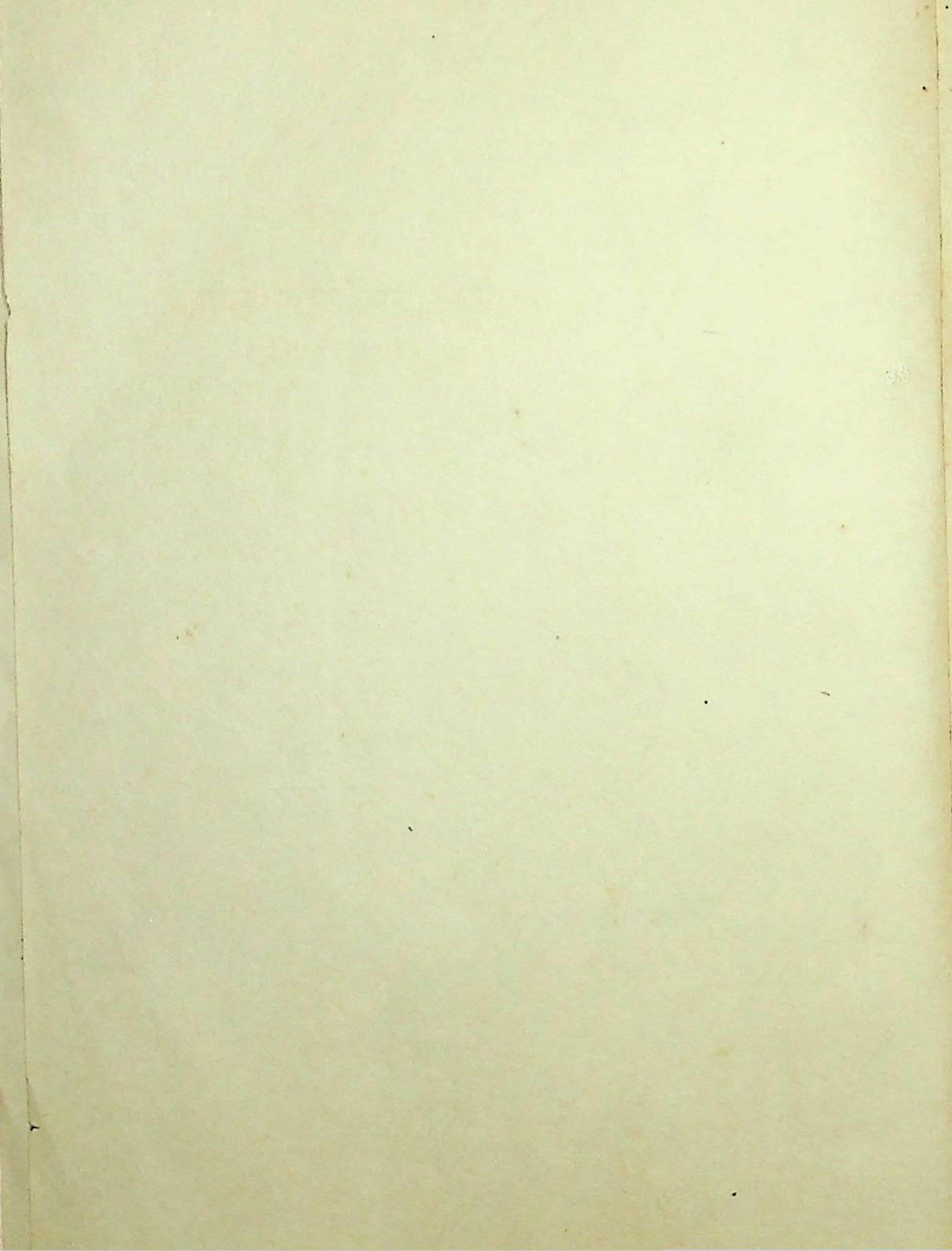
महादेवी वर्मा और उनका "आधुनिक कवि"

—तारकनाथ बाली एम० ए०





महादेवी वर्मा और उनका
'आधुनिक कवि'

महादेवी वर्मा
और उनका
"आधुनिक कवि"

(आधुनिक कवि (भाग १) महादेवी वर्मा
पुस्तक की व्याख्या)

श्री तारकनाथ बाली एम० ए०

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक :

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

तृतीय संस्करण—१९६३
मूल्य : २.५०

मुद्रक :

कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा

दो शब्द

महादेवी जी की सूक्ष्म, सतरंगी एवं अनेकरूपात्मक कला भावुक को सहज ही लीन कर देती है किन्तु एक आलोचक के लिए उसकी व्याख्या करना बहुत कठिन कार्य है। प्रस्तुत व्याख्या को सरल तथा सिद्ध बनाने के लिए मैंने जो प्रयत्न किया है उसकी सफलता-असफलता का निर्णय तो साहित्य के विद्यार्थी ही करेंगे।

श्री लक्ष्मीनारायण टण्डन, 'प्रेमी' तथा श्री रामखेलावन चौधरी ने आधुनिक कवि (महादेवी) की समालोचनात्मक टिप्पणी लिखी है। किन्तु मुझे उसमें अर्थ सम्बन्धी उलझनें प्रतीत हुई। उदाहरण के लिए पांचवें गीत की इन दो पंक्तियों को देखिए—

'कन कन में बिखरा दे निर्मन !
मेरे मानस का सूनापन।'

अन्वय ऊपर की सभी कल्पनाओं के साथ होगा। किन्तु प्रेमीजी तथा चौधरीजी ने ऊपर की कल्पनाओं का पृथक्-पृथक् अर्थ किया है।

४१ वें गीत की इन पंक्तियों का अर्थ देखिए—

विद्युत के चल स्वर्णपाश से बँध हँस देता रोता जलधर;
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर !

(पृ०—६५)

इसका अर्थ प्रेमीजी तथा चौधरीजी ने इस प्रकार किया है—

'बिजली रूपी चंचल स्वर्ण-डोरी में बँधा मेघ कभी तो हँसता है और कभी रोता है। कभी तो बिजली चमकती है और कभी मेह बरसता है। ऐसा

लगता है कि जैसे सागर अपने कोमल हृदय से उत्पन्न अग्नि को अपने गीतों (सागर की लहरों) से नहलाता (शान्त करता) हो।

वस्तुतः इन पंक्तियों में दो भिन्न कल्पनाएँ हैं जिनका परस्पर उपमेय-उपमान सम्बन्ध नहीं है मैंने इनका अर्थ इस प्रकार किया है—

'बिजली के सुनहले बन्धन में फँसकर रोता हुआ मेघ भी हँसने लगता है। बिजली की चमक बादल की हंसी है। और सागर भी कल-कल ध्वनि करता अपनी लहरों से बड़वानल को शान्त करता है। क्योंकि प्रिय आने वाले हैं इसीलिए ही तो सारी प्रकृति का दुःख दूर हो गया है।'

—तारकनाथ वाली

हस्तलिखित गीत

पंथ होवे दो **स्वर्ण वेला !**

शब्दार्थ—निर्माण-उन्मद = सृजन के आकांक्षी ।

भावार्थ—यदि मेरा कार्य नया है, यदि इस मार्ग पर चलने वाली मैं अकेली ही हूँ, तो कोई चिन्ता नहीं । वे कोई दूसरे ही पाँव होंगे जो पथ की विषमताओं से हार जाते हैं । वे दूसरे ही व्यक्ति हैं जो मार्ग की बाधाओं से भयभीत होकर अपने निश्चय तोड़ कर वापिस आ जाते हैं । करुणा का व्रत लेने वाले और सृजन के कांक्षी मेरे चरण तो अनन्त पथ को भी पार करने का साहस रखते हैं ! निरन्तर अपने मार्ग पर चलकर ये चरण ही अंधकार में डूबी हुई सृष्टि उषाकाल का सुनहला प्रकाश फैला देंगे ।

दूसरी होगी कहानी **चिनगारियों का एक मेला !**

शब्दार्थ—वह कोई दूसरी ही कहानी होगी जो स्मृति में डूब गई है, जिसका कोई भी चिन्ह शेष नहीं बचा है किन्तु मैं तो निरन्तर आँसुओं की ऐसी हाट लगाती चल रही हूँ, और चिनगारियों का ऐसा मेला लगाती जा रही हूँ, जिसे देखकर प्रलय भी चकित हो गई है । मेरे आँसू मेरे भावों के संसार को भी नहीं मिटा सकते । इसलिए वह चकित है । अर्थात् मेरे आँसू और भाव अमर-अनन्त हैं ।

हास का **दुकेला !**

भावार्थ—चाहे तुम हँसी का वसन्त लेकर आओ, चाहे तुम क्रोध से भरी दृष्टि का पतझर लेकर आओ, मेरा शान्त हृदयतो व्यथा के आँसुओं और मनोहर स्वप्नों के कमलों की भेंट लेकर ही तुम्हारा स्वागत करेगा । यह जान लो कि मिलन में तो प्रिय और प्रिया दोनों की सत्ता विलीन हो जाती है, दोनों एक

होते हैं, किन्तु विरह में प्रत्येक का अपना अस्तित्व बना रहता हैं और एक को दूसरे की स्मृति बनी रहती है। महादेवी अपने व्यक्तित्व को प्रिय में लीन नहीं कर देना चाहतीं, वरन् अपनी पृथक सत्ता को अक्षुण्ण रखना चाहतीं हैं।

विशेष—'पंथ'—महादेवी का पंथ करुणा का है। करुणा व्यक्तिगत नहीं समाजगत है। साथ ही इसमें निर्माण का अदम्य उत्साह है, संसार में स्वर्ण-प्रभात लाने की तीव्र इच्छा है। महादेवी ने स्वयं लिखा है—

"इस समय से मेरी प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई जिसमें व्यष्टिगत दुःख समष्टिगत गम्भीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा।" भूमिका पृ० ३०

कहना नहीं होगा कि बाद के गीतों में महादेवी ने इसी 'सूक्ष्म' के प्रति अपने उद्‌गार प्रकट किए हैं। प्रस्तुत गीत के अन्तिम छन्द में महादेवी ने इसी 'सूक्ष्म को सम्बोधन किया है।

"ले मिलेगा······शत दल" जब कोई प्रिय आता है तो अर्घ्य और पुष्प से उसका सत्कार किया जाता है।

"दुकेला" महादेवी की करुणा में स्वाभिमान भी है। इसीलिए वह अपने व्यक्तित्व को अलग रखना चाहती हैं।

स्पष्टतः महादेवी की करुणा के तीन गुण हैं। प्रथम, वह व्यक्तिगत नहीं समाजगत है, द्वितीय, उसमें सृजन की उच्छ्वसित कामना है, तृतीय, उसमें स्वाभिमान है। तीनों गुण इस गीत में मिलते हैं।

:o:—:o:

महादेवी वर्मा

और उनका 'आधुनिक कवि'

१

निशा की ... इस पार !

शब्दार्थ—राकेश=पूर्णचन्द्र । अलकें=केश । मधुमदिर=मकरन्दरूपी मदिरा । वात=पवन ।

भावार्थ—जब पूर्णचन्द्र रात्रि के केश खोलकर उन्हें चांदनी में धो देता था, जब मधुमास कली से मधु की मदिरा खरीदने के लिए उसका मोल पूछता था, जब पगला पवन ओस की बूँदों के हारों को धूल में विखरा देता था, तभी तुम मुझे जीवन का मधुर सङ्गीत सिखाने मेरे पास आए थे । जीवन में कितना माधुर्य है, यह तुम्हारे आने पर ही मुझे ज्ञात हुआ ।

राकेश और निशा, मधुमास और कली का तथा पागल पवन का मानवीकरण है ।

बिछाती थी ... प्यार !

शब्दार्थ—कोर=दृष्टि । बिछलते=फिसलते ।

भावार्थ—करुणा से भरी तुम्हारी दृष्टि मेरे हृदय में मनोहर स्वप्नों की लड़ियाँ लगा देती थी । तुम्हारी मुस्कराहट मुझे मीठी पीर में डुबो गई । सीखे हुए रागों को मैं भूल-भूल जाती थी । मेरे हाथ बार-बार स्खलित हो-हो जाते थे । तब हे करुणेश ! तुम्हें मेरी इन भूलों पर प्यार आता था ।

गए तब से **झङ्कार !**

शब्दार्थ— निर्वाण=बुझे ।

भावार्थ— हमारे मिलन को हुए कितने युग बीत गए । रातों में मैंने कितने ही दीपक जलाए और वह प्रातःकाल बुझ गए । किन्तु मैं वैसा मोहक गीत न सीख सकी जैसा तुम गाते थे । हे देव ! मुझ से अब गीत नहीं गाया जाता । मेरी अँगुली थक गई है, वीणा के तार ढीले हो गये हैं । इसलिए मेरी इस धुँधली झङ्कार को अपनी विश्व वीणा में मिला लो । मुझे अपने में लय कर लो ।

२

रजतकरों **आते !**

शब्दार्थ—रजत कर=चाँदनी की किरणें । अंजन=सुरमा ।

भावार्थ— जब संसार चाँदनी की किरणों की तूलिका में कोमल ओस की बूँदें भर-भर कर कलियों पर अपनी करुण कथा लिख रहा था;

जब भोले मेघ पवन के रूप में सजल हृदय की उच्छ्वासें लुटा जाते थे, जब रात का अन्धकार दिन में लगे घावों पर अंजन लगाकर उन्हें शान्त करने के लिए फैल जाता था;

मधु की बूँदों **तान !**

शब्दार्थ— तारक लोक=तारा लोक । नीरव=शान्त ।

भावार्थ—जब मकरंद की बूँदों में तारे रूपी फूल प्रतिबिम्बित होने लगे, और जब नदी का एकान्त किनारा वियोगी हृदय के धीर कम्पन के समान उर्मिल हो उठा;

तब मूक प्रेम के समान, मीठी कसक के समान, स्वप्नों की पुकार के समान जो मेरा प्रियतम है, वह चुपचाप मुरली की तान सुनाने आया ।

चल चितवन **प्याले !**

शब्दार्थ—निर्निमेष=अपलक ।

भावार्थ—उनके चचल कटाक्ष रूपी दूतों ने गोपनीय बातों को सुनाकर मेरे अपलक नयनों में तूफान उठा दिया ।

तभी से मेरा जीवन पागल होगया है, प्राणों के घाव ही मेरी संचित निधियाँ हैं, और मेरा मन अपरिमित पीड़ा पीने के लिए आकुल हो उठा है ।

पीड़ा का हास !

शब्दार्थ—निर्वाण=अन्त ।

भावार्थ—मुझ में अथाह पीड़ा के साम्राज्य का निर्माण करने वाला मेरा प्रियतम एक दिन बहुत दूर क्षितिज के उस पार चला गया । इस पीड़ा का कहीं भी अन्त नहीं है । और मेरा मूक रुदन ही मेरा पहरेदार बन गया है जो मुझे इस पीड़ा के साम्राज्य से बाहर नहीं निकलने देता ।

सखि समझाती है कि वह मिलन तो स्वप्न था । इस पर वियोगिनी उत्तर देती है 'हे सखि तू किस आधार पर कहती है कि मेरा वह मिलन था ? आज तक फूलों में प्रियतम की हँसी और मेरे आँसू भरे हुए हैं । फूलों की हँसी और ओस के आँसू ही हमारे मिलन की अनश्वर निशान है ।

विशेष—आरम्भिक गीतों में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि महादेवी की विरह-करुणा व्यक्तिगत है ।

आरम्भिक छन्दों में प्रकृति का चित्रण करुण वातावरण का निर्माण करता है । आगे चलकर इसी वातावरण में करुण-मिलन होता है ।

२

निश्वासों का अस्थिर है संसार !

शब्दार्थ—निश्वास=साँस, पवन । नीड़=घोंसला । अभिराम=सुन्दर ।

भावार्थ—जब रात के झोकों में सारा संसार सोया रहता है, और जब तारे मोती के वन्दनवार के समान टूटकर छिपने लगते हैं, तब विलीन होते हुए नक्षत्रों के नयनों की करुणा ओस के आँसुओं में यह लिख जाती है कि संसार अस्थिर है ।

हँस देता   मादक है संसार !

शब्दार्थ—बिछलन = गति ।

भावार्थ—जब प्रात:काल आकाश के सुनहले आँचल में रोली बिखेर कर हंस देता है, जब लहरों की गतियों पर भोली किरणें फिसलने लगती हैं, तब कलियाँ धीरे से पल्लव के कोमल घूँघट उठाकर मदभरे नयनों से कहती हैं कि संसार बहुत मादक है ।

देकर सौरभ दान   निष्ठुर है संसार !

भावार्थ—जब फूल पवन को सुगन्धि देकर मुरझा जाते हैं तब वायु के झोंके फूलों में रेत भर देते हैं । इस पर फूल पवन से कहते हैं कि हम जिसके (पवन के) पावों के नीचे बिछे वही क्यों हमारी आँखों में रेत झोंक रहा है । उधर भँवरों की गुन्जार भी यही कहती है कि अब इन पुष्पों में क्या बचा है । ये तो मुरझा गए हैं । तब पल्लवों की मर्मर ध्वनि यह कहती है कि संसार बहुत निष्ठुर है ।

स्वर्ण वर्ण   मतवाला संसार !

शब्दार्थ—बार = जला । पारावार = सागर ।

भावार्थ—संध्या के समय जब दिवस सुनहले रङ्ग में अपने जीवन की समाप्ति की सूचना देता है और जब गोधूली आकाश में असंख्य तारों के दीपक जला देती है, तब बढ़ते हुए अन्धकार का सागर यह कहता है कि युग बीत गए किन्तु फिर भी मतवाला संसार अभी तक जीवित है ।

ज़ब एक की पराजय होती है तो जीतने वाला दीपावली मनाता है । किन्तु यह जीत भी कभी पराजय बन जाएगी, यही सोचकर अन्धकार हँसता है ।

स्वप्न लोक   पागल है संसार !

शब्दार्थ—स्वप्न लोक के फूल = मधुर कल्पित आशाएँ ।

भावार्थ—कल्पना की मधुर आशाओं से अपने जीवन को अलंकृत कर जब मेरा पागल हृदय यह सोचता था कि मेरा कल्पित सुख का राज्य अनश्वर

(न मिटने वाला) है तब न जाने किस अनजान देश से किसी की झङ्कार व्यथा भर स्वरों में यह सुना जाती थी कि यह संसार बहुत पागल है।

विशेष--महादेवी ने संसार की अस्थिरता, मादकता, निष्ठुरता, मतवाले पन और पागलपन को देखा है। किन्तु मादकता, मतवालापन और पागलपन सभी कुछ संसार की निष्ठुर अस्थिरता में परिवर्तित हो जाता है।

४

रजनी भरकर डाली !

शब्दार्थ—तटनी=नदी। विधु=चन्द्रमा। प्राची=पूर्व दिशा। चितेरा= चित्रकार।

भावार्थ—जब रात्रि तारों से अलंकृत जाली को ओढ़े हुए जा रही थी, जब उसकी लुटती हुई समृद्धि को देखकर चाँदनी ओस के आँसू रोती थी;

जब लहरों को चूमते हुए, चन्द्रमा को छू लेने के लिए आकुल नदी मूक अंधकार का आलिंगन कर रही थी;

जब मलय-पवन अपने दुःख की गाथा सुनाता था तब सारी धरती आँसुओं से भीग जाती थी;

जब सौरभ पल्लव के झूले डालकर कलियों में सो रहा था, और जब पराग से सनी कुंजों में धीरे-धीरे किरणें आ रहीं थीं;

जब जाग कर ही सारी रात बिताकर पीला चन्द्रमा छिपने लगा; और जब प्रातःकाल रूपी मित्र (सूर्य) पूर्व दिशा में चित्र बनाने के लिए आया;

जब कण-कण में प्रातःकालीन लालिमा छाई थी, तभी मैं निर्धन सपनों से डाली भरकर ले आई।

जिन चरणों की अँधेरा !

शब्दार्थ—हीरक जाल=हीरों के समूह। व्रीड़ा=लज्जा। निर्मम= निष्ठुर।

भावार्थ—जिस चरणों के नखों की आभा ने हीरों की ज्योति को भी लजा दिया था, उन पर मैंने अपने दो-चार धुँधले आँसू चढ़ाए। (यहाँ प्रियतमा की महिमा और प्रियतमा की दरिद्रता सूचित होती है।)

उनके दर्शनों के लिए लालायित इन पलकों पर जब लज्जा का अंकुश था, तभी मुझे उस चितवन ने पीड़ा का राज्य दे दिया। मैं उन्हें खुलकर देख भी न पाई कि वियोग हो गया।

उस सुनहले स्वप्न को देखे हुए युग व्यतीत हो गए हैं। निरन्तर रोते रहने से नयनों के खजाने खाली हो गए हैं।

मेरा जीवन शून्य हो गया। मैं इस सूनेपन की मस्त रानी हूँ। पापों को वियोग की आग में जलाकर मैं निरन्तर अपने सूने राज्य में दिवाली करती रहती हूँ। एक तो सूनापन और उस पर वियोग की आग।

मेरी आहें इन ओठों में ही सो गई हैं। हृदय पर लगे हुए घाव ही मेरी निधि हैं।

हे निष्ठुर ! भले ही मेरे प्राणों का दीपक बुझ जाए, इसकी मुझे कोई चिन्त ा नहीं है। किन्तु इसके बुझने पर तेरा पीड़ा का राज्य अन्धेरा हो जाएगा। मेरी मृत्यु के साथ ही करुणा का भी अन्त हो जायगा।

विशेष—प्रकृति के करुण मानवीकरण की छाया में अपने मूक मिलन और गम्भीर व्यथा का उद्घाटन है।

५

मिल जाता … का सूनापन !

शब्दार्थ—विद्युत=बिजली। समीरण=पवन।

भावार्थ—जब आकाश तारे फैला कर उन्हें गिनता है और संध्या की आँखों की लालिमा काजल से अन्धकार में विलीन हो जाती है तब संध्या की अतृप्त इच्छाओं में और घुटी हुई आहों में;

व्यथा का प्याला पिये हुए, झूम-झूम कर मतवाली चाल से चलती हुई, हृदय में साँस की घुटन लिए हुए जब मेघों की माला आती है, तो उसके बार-बार वर्षा रूप में रोने में, और बिजली के प्रकट होकर विलीन हो जाने में;

जब रातें इस नीरव संसार में ठण्डी साँसों में भर-भर कर मोती के समान आँसू की पंक्तियाँ भर जाती हैं, तब उन रातों के भय-कम्पन में, और चन्द्रमा की अतृप्त किरणों के विकीर्ण होने में;

न जाने किस बीते हुए जीवन की कहानियाँ सुनकर मन्द पवन मुरझाए हुए फूलों को छू देता है। फूलों की फीकी हंसी में और उनके झरने में;

प्यासे आँखों की प्रेम-भिक्षा में तिरते हुए आँसू के निशानों में, अधरों पर बिखरी हुई पीड़ा में, और आहों के छोड़ने में, कण-कण में, हे निष्ठुर, मेरे मन का सूनापन बिखरा पड़ा है।

विशेष—अपने भाव की व्यापक अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

"कन कन में बिखरा है निर्मम ! मेरे मानस का सूनापन।" ये दो पंक्तियाँ प्रत्येक छन्द के साथ प्रयुक्त होंगी।

६

मैं अनन्त **अभिलाषें !**

शब्दार्थ—अनन्त पथ=विरह के पथ में चलते हुए। सस्मित सपनों की= मोद भरे स्वप्नों की। उनको—रातें=चाहे ओस भरी कितनी ही रातें क्यों न बीत जाएँ—चाहे कितना ही काल क्यों न बीत जाए—मेरी वाणी अमिट रहेगी। होकर सीमा हीन—अभिलाषें=मेरी तीव्र इच्छाएँ अतृप्त रहेंगी।

भावार्थ—विरह के अनन्त पथ पर चलते हुए मैं जो अपने मोद भरे स्वप्नों का वर्णन लिख जाऊँगी, वे रक्तों के आँसूओं से भी न मिटेंगे। (साधारणतया पानी के पड़ने पर लिखी हुई बातें मिट जाती हैं किन्तु मेरे वर्णनों में कुछ ऐसा स्थायित्व है कि वे सदैव गुंजार करेंगे। विशेषोक्ति अलङ्कार—कारण होने पर कार्य न हो।)

वर्षा ऋतु में जब मेघ आएँगे और वायु के वेग से धूल उड़कर मेघों तक पहुँचेगी, तब वह धूल मेरी व्यथा को लेकर बादलों तक पहुँचाएगी। (महादेवी केवल यह वर्णन करना चाहती हैं कि उनकी दर्द भरी कहानी कभी भी लुप्त नहीं होगी।)

तारों की छाया में सभी नर-नारियाँ प्रसन्न होंगी और उनकी हँसी तारों में प्रतिबिम्बित होने लगेगी, किन्तु मेरी इच्छाएँ तब भी अतृप्त रहेंगी। (तारों की हँसी को महादेवी ने नर-नारियों की हँसी का प्रतिबिम्ब माना है।)

वीणा होगी **खेल !**

शब्दार्थ—वीणा होगी मूक=जीवन समाप्त हो जाएगा। विस्मृति के—निर्वाण=सजगता के अभाव के कारण निर्वाण का भी कोई मूल्य नहीं रहेगा। अमरता—खेल=मेरे अमर प्रेमी को भी चंचल, अस्थिर स्वप्नों में आनन्द आने लगेगा।

भावार्थ—जब मेरा जीवन समाप्त हो जाएगा, और जब मैं अपने जीवनाधार देवता को भी भूल जाऊँगी तब मेरी विस्मृति की अवस्था में सैकड़ों निर्वाण भी महत्वहीन हो जाएँगे। तब निर्वाण का भी कोई मूल्य नहीं रहेगा।

जब मेरे अस्थिर व्यक्तित्व का मिलन मेरे अमर प्रियतम से होगा, तब उसे भी अस्थिर क्रीड़ाओं में आनन्द आने लगेगा।

विशेष—समग्र दृष्टि से देखने पर इस गीत में अन्विति का अभाव और भावों की धूमिलता दिखाई देती हैं। महादेवी शैली-वैचित्र्य में ही उलझी दिखाई देती हैं।

७

छाया की **मंहगापन !**

शब्दार्थ—छाया की आँख मिचौनी=धूप-छाँव। रजनी के—कन=ओस भरी अँधेरी रातें। फूलों की—चितवन=सुन्दर फूल। नभ-दीपावलियाँ=तारे। विधु=चाँद। मादक मकरन्द=रस।

भावार्थ—धूप-छाँव के सौंदर्य, मतवाले मेघ, ओस भरी काली रातें; (मानवीकरण)।

सुन्दर फूल, चमकते हुए तारे, संध्या के पीले आकाश पर डूबते हुए सूर्य की किरणों की फुलझड़ियों सी आभा;

और मादक रस से भरी हुई चाँद की सफेद थाली में मिसरी के समान घुल कर समाप्त होती हुई चांदनी रातें;

लेकर जब तुम मुझे रिझाने आओगे, और फिर भी में अपनी पीड़ा का

त्याग न करूँगी तब तुम इतना प्राकृतिक वैभव होते हुए भी भिखारी के समान निराश लौट जाओगे, तभी मेरे प्राणों का मूल्य समझ पाओगे ।

विधु की—मिसरी सी=रस भरे बर्तन में यदि मिसरी डाली जाए तो वह घुल जाती है । चाँद रस भरी चाँदी की थाली है । चाँदनी रातें मिसरी के समान हैं । इसीलिए वे चाँद के रस में घुल जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं ।

क्यों आज **गिन ?**

शब्दार्थ—मरकत=नीलम । मरु=रेगिस्तान । मानस=हृदय । सिकता-कण=रेत का कण, आँसू । अविराम=निरन्तर ।

भावार्थ—प्रिया के आँखों में आँसू देखकर प्रियतम अपने नीलम के सिंहासन को त्यागकर उसके पास आने को व्याकुल होता है । इस पर कवि-यित्री कहती है—

तुम आज अपने नीलम के सिंहासन को क्यों त्याग रहे हो ? मेरा यह आँसू तो तुम्हारे सिंहासन की तुलना में बहुत ही तुच्छ है । यह तो मेरे हृदय की मरुभूमि का एक चमकता हुआ रेत का कण है ।

तुम्हारे इस संसार में सूर्य का प्रकाश लुप्त हो जाता है, तारे विलीन हो जाते हैं, किन्तु मेरा मन तो दीपक के समान निरन्तर जला करता है ।

दुःखों के आने पर मनुष्य निराश हो जाता है और बौद्धिक सजगता खो बैठता है । किन्तु वही दुःख मेरी आंखों का आँसू बन कर विलीन हो जाता है । मैं तब भी सजग बनी रहती हूं ।

संसार मेरा उपहास करता हुआ कहता है कि मेरी आँखें दरिद्र हैं । किन्तु क्या वह मोती से मेरे आँसुओं को गिन सका है ? संसार क्या जाने कि मेरे पास मोतियों के समान मूल्यवान आँसुओं का कितना बड़ा खजाना है !

मेरी लघुता **सूनापन !**

शब्दार्थ—लघुता=क्षुद्रता । दिव्य-लोक=देवलोक । व्रीड़ा=लज्जा ।

भावार्थ—जिन देवताओं को मेरी दरिद्रता पर लज्जा आती है क्या वे मेरी पीड़ा को अपने यहां स्थान दे सकेंगे ? मेरे पीड़ा के धन को रखने योग्य उनके पास कोई स्थान है ?

मेरा यह भिखारियों सा जीवन उन देवों से छोटा नहीं है। यदि उनके पास अथाह करुणा है तो मेरे जीवन में अनन्त सूनापन है। दोनों की सम्पत्तियाँ असीम हैं।

८

घोर तम **उस पार ?**

शब्दार्थ—घोर तम=अन्धकार, गहन निराशा। मारुत=पवन। फेनिल उच्छ्वास=फेन भरी लहरें। तरी=नौका।

भावार्थ—चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ है। भयङ्कर घटायें घिर आई हैं। पवन का वेग भी उल्टा है। और वह इतना तेज है कि पहाड़ भी हिले जाते हैं। सागर में उत्ताल तरंगें उठ रही हैं। मुझे इन विपत्तियों में कौन पार लगाएगा ?

पर्वत के समान ऊँची तरंगें उठ रही हैं। उसका गर्जन भयभीत कर रहा है। फेन भरी तरंगें मेरी छोटी नौका का मजाक उड़ा रही हैं। मेरे हाथ से पतवार भी छूट गई है। मुझे उस पार कौन लगाएगा ?

ग्रास करने **उस पार ?**

शब्दार्थ—ग्रास करने=खाने के लिए, नष्ट करने के लिए। स्वच्छन्द=स्वतन्त्र। जलचर वृन्द=जल-जन्तुओं के समूह। उत्ताल=ऊँची। रैन=रात कृष्ण दुकूल=काला दुपट्टा। विसर्जन करो=त्याग दो। कर्णधार=माँझी, पतवार।

भावार्थ—मेरी नौका को नष्ट करने के लिए जल-जन्तुओं के समूह स्वतन्त्र रूप से विचर रहे हैं। अनन्त काले सागर को देखकर मेरा सारा साहस समाप्त हो गया है। अत्यन्त ऊँची तरंगें उठ रही हैं मुझे उस पार कौन पहुँचाएगा ?

अब तो मेरी आशा का नक्षत्र भी छिप गया है। रात काला दुपट्टा ओढ़ कर बोली कि अब तुम अपने इच्छा रूपी फूलों को फेंक दो, कोई भी पतवार लेकर नहीं आएगा। मुझे उस पार कौन पहुँचाएगा ?

सुना था मैंने **उस पार ?**

शब्दार्थ—हंसते विहग—नाम=जहाँ के पक्षी मौत और दुःख का नाम सुनकर उनकी हँसी उड़ाते हैं। ललाम=सुन्दर। धरा=धरती। नीरव=मूक।

भावार्थ—मैंने सुना है कि इस भयंकर सागर के उस पर सुनहला संसार बसा हुआ है। वहाँ के सुन्दर पक्षी मृत्यु और दुःख का नाम सुनकर उनका मजाक उड़ाते हैं। जहाँ धरती अत्यन्त सुन्दर है। मुझे वहाँ उस पार कौन ले जाएगा ?

जहाँ के झरने मूक गाने सुनाकर व्यक्ति को अमरता प्रदान करते हैं। आकाश मधुर संगीत सुनाकर हृदय के उत्साह और उल्लास को जगा देता है। जिस संसार में अनन्त प्यार भरा है, मुझे वहाँ कौन ले जाएगा ?

पुष्प में **उस पार !**

शब्दार्थ—पुष्प मुस्कान=फूल सदा खिले रहते हैं। त्याग—गान=पवन त्याग के गीत गाता है। विसर्जन—कर्णधार=त्याग ही माँझी है।

भावार्थ—जहाँ फूल सदा खिले रहते हैं, पवन त्याग के गीत गाता है, सभी वस्तुओं में मोहक विकास और अमर ज्योति है। ऐसा संसार कितनी दूर है ! मुझे वहाँ कौन पहुँचाएगा !

किसने आकर एक क्षण में ही यह मोहक सन्देश सुनाया है कि नाव को बीच धारा में ले जाओ। डूब कर ही तुम पार पहुँच पाओगे। त्याग ही माँझी है। और वही तुम्हें उस पार पहुँचा देगा।

विशेष—यहाँ महादेवी के मन में अमरों के स्वर्णिमलोक में जाने की चाह बनी हुई है। किन्तु साधन त्याग का है। परन्तु आगे चलकर महादेवी को अमरों के लोक की कामना नहीं रहती।

६

थकी पलकें **छोटे प्राण !**

शब्दार्थ—व्यथा=दुःख। अवसाद=दुःख। वेदना की—राग=रात्रि

के समय जब आकाश शान्त होता है और व्यक्ति थकावट की वेदना में वेसुध सोता रहता है। तारक-फूल=तारा रूपी फूल।

भावार्थ—जब आकाश व्यक्तियों के समान थक कर सोते हुए स्वप्न देखता हो, जब बादलों से उदासी टपकती हो;

जब चारों ओर सुनसान और शान्ति हो, और जब रात साँस रूपी तारों में गूँथ कर तारों के हार बनाती हो, तो हे मेरे देव ! मेरे पागल, हठीले और छोटे प्राणों को भी उन्हीं में गूँथ देना।

किसी जीवन **आँसू के हार !**

शब्दार्थ—मलयानिल=मलय पर्वत से आती हुई वायु। उच्छ्वास=झोंके।

भावार्थ—जब प्रातःकाल जीवन की मधुर स्मृतियों को फिर से जगा देता हो, जब कलियाँ अपनी आँखें खोलकर स्वप्न सुनाती हों, जब मलयानिल के झोंके फिर से सुगन्धि ढूँढ़ने के लिए आकुल हों, जब प्यासे फूलों की प्यास ओस की बूँदें माँगती हों, तब हे देव ! तुम उन फूलों को मेरे आँसू पिला देना।

मचलते **राग !**

शब्दार्थ—अनुराग=प्रेम।

भावार्थ—जब उठते हुए भावों के समान ही किरणों के जाल उलझ जाते हों, जब नन्हीं लहरें पवन को छूकर गर्भित हो उठती हों, जब संसार के व्यक्ति आश्चर्य में अपनी दर्द भरी कहानी को याद कर रहे हों, जब दिन प्रसन्न होकर सूर्य की सुनहली प्याली में किसी का प्रेम रस पी रहा हो, तब हे देव ! उस प्याली में मेरे मादक प्रेम को उँड़ेल देना।

मत्त हो **फूल !**

शब्दार्थ—मत्त=मस्त। हाला=शराब। पारावार=सागर।

भावार्थ—जब सागर शराब पीकर बेहोश हो गया हो, और जब तूफान उठ रहा हो, जब छाया पवन के झोंके से कुछ मधुर संदेश कह रही हो, जब व्यथित हृदय चौंक-चौंक उठते हों, तब तुम चुपचाप मेरे जीवन के इस सुन्दर मुरझाए फूल को गिरा देना।

विशेष—प्रस्तुत कविता में प्रकृति का मानवीकरण नहीं मानव व्यापारों का प्रकृतीकरण हुआ है, जो मानवीकरण की ठीक विपरीत प्रवृत्ति है। 'थकी पलकें सपनों पर डालकर आकाश का सोना', 'शून्य का वेदना की विश्ववीणा पर नीरव राग गाना', 'मलयानिल के उच्छ्वासों का खोया उन्माद खोजना,' किरणों का उलझना', 'संसार का प्राणों के दाग गिनना', 'सुप्त आहों के दीन विषय का प्रश्न पूछना', सब कुछ एक अजीब तमाशा है। शब्दों का विचित्र सम्मिश्रण कविता नहीं हो सकती और चाहे जो भी हो। 'प्राणों का गूँथना' आदि सरस एवं सरल कल्पनाएँ हैं।

१०

जो मुखरित **बुझ जाना !**

शब्दार्थ—मुखरित=अभिव्यक्त। आवाहन=पुकार। निस्पन्द=स्थिर। निर्वाण होना=बुझ जाना। निर्घोष=घोष रहित; नीरव। दीपावलियों= तारों।

भावार्थ—मेरे प्राणों का जो भावावेग मेरी पुकार को वाणी दे देता था, मैंने आज उसे शान्त कर दिया है। इसलिए अब कभी भी मेरी विरह की पुकार प्रकट न हो सकेगी। मैंने अपनी पुतली की चंचलता को पलकों में बाँध लिया है। इसलिए वे आँखें, जिनमें कभी आँधी सा वेग था, आज स्थिर हो गई हैं। मेरा हृदय दीपक के समान जल-जलकर प्रिय के आने का इन्तजार करता रहा। किन्तु अब वह सम्पूर्ण आकांक्षाओं को त्यागकर बुझ गया है। उसका आवेश मिट गया है। जिस प्रकार बिजली की तड़प नीरव धाराओं में छिपी हुई है, उसी प्रकार मेरे प्राणों की मचलती व्यथा प्राणों में ही सोई है। झंझा के समान तीव्र उन्माद अब शान्त होते जा रहे हैं। मेरे करुणेश को अन्धकार में छिपकर आना ही भला लगता है। इसलिए हे नक्षत्रो ! तुम एक क्षणभर के लिए बुझ जाओ। जब सर्वत्र अन्धकार छा जाएगा तभी मेरा प्रियतम मुझसे मिलने आएगा।

विशेष—कवयित्री विरह के भावावेश पर काबू पाने का प्रयत्न कर रही है।

११

स्वर्ग का था **सङ्गी जीवन !**

शब्दार्थ—स्वर्ग—उच्छ्वास=मेरा जीवन स्वर्ग से अवतरित हुआ था। क्षणभंगुर=नश्वर। क्षीरनिधि=सागर। आकर=खान।

भावार्थ—मेरा मोद भरा जीवन स्वर्ग से अवतरित हुआ था, देवता की वीणा का एक तार था जो उससे अलग जा पड़ा था, मृत्यु का नश्वर उपहार था क्योंकि क्षणभंगुरता का कारण है मृत्यु, प्राणों का शृङ्गार करने वाला रत्न था। सुन्दर-सुन्दर आशाओं से सुसज्जित एक उपवन था जिस प्रकार उपवन में फूल खिले होते हैं उसी प्रकार मेरे जीवन में अनेक आशाएँ लहरा रही थीं।

मैं सागर की एक शान्त लहर थी जिसमें किसी प्रकार का आवेश नहीं था, मेरा सुन्दर जीवन सरलता का एक अनुपम झरना था, जो सुनहले स्वप्न के समान था, प्रेम की एक आकर्षक खान था, मेघ से रहित स्वच्छ आकाश के समान चिन्ताओं से मुक्त था।

इन दोनों छन्दों में कवियित्री ने अपनी मुग्धावस्था का काव्यात्मक चित्रण किया है।

अलक्षित आ **भूले जीवन !**

शब्दार्थ—अलक्षित=बिना दिखाई दिए, अचानक। आश=आशा। स्वप्नों का हास=मोद भरे सपने।

भावार्थ—अचानक ही न जाने किसने चुपचाप आकर अपना मादक गीत सुनाया, सपनों का मधुर साम्राज्य दिखाया, और मेरे जीवन को अबोध बना दिया। हे मेरे भोले जीवन ! तुमने मोह की मदिरा का आस्वादन क्यों किया ? प्रेम में फँस जाने पर तुम्हारी यह बुरी दशा हुई।

निराशा तुम्हें व्यथित कर जाती है, आशा तुम्हें हर्षित कर जाती है, धूर्त संसार तुम्हें परेशान कर देता है, मीठे स्वप्न तुम्हें हँसा देते हैं और हे मेरे मोहित जीवन ! अब तुम मोह के विष को ही संजीवनी मानने लगे हो।

न रहता **छोटे जीवन !**

शब्दार्थ—आह्वान=पुकार, गुंजार। अन्तर्धान=छिपना।

भावार्थ—अब कवियित्री अपने आपको संसार की क्षणभंगुरता दिखाकर समझाने का प्रयत्न करती है ।

भ्रमरों की गुंजार सदैव नहीं होती रहती और न ही सदा फूल मुस्कराते रहते हैं । फूल झर जाते है, भ्रमरों की गुंजार बन्द हो जाती है । बसन्त आता है और चला जाता है । कोयल गीत गाती है, फिर उड़ जाती है । हे नश्वर जीवन ! यह कभी भी न भूलो कि स्थायी मिलन असम्भव है ।

फूल मुरझाने के लिए ही खिलते हैं । चाँद अस्त होने के लिए ही उदय होता है । बरसकर खाली होने के लिए ही बादल जल भर कर लाता है । दीपक बुझने के लिए ही जलता है । अरे चंचल जीवन ! यहाँ किसका जीवन अमर है ? सभी ही तो नाशवान हैं ।

छलकती जाती प्यारे जीवन !

शब्दार्थ—छलकती—मीत=तेरी शक्ति घुलती जा रही है । उन्मीलन= खोलना । विच्छेद=वियोग ।

भावार्थ—हे मित्र ! तेरी शक्ति दिनों दिन कम होती जा रही है । तेरा सौन्दर्य मिटता जा रहा है । तेरा आकर्षण समाप्त होता जा रहा है । हे मतवाले जीवन ! तुम क्षण भर के लिए आँखें खोल कर वास्तविकता को देखो, तब तुम्हें ज्ञात होगा कि सभी कुछ नश्वर है ।

तुम सजग हो जाओ । अपनी शून्यता को गंभीरता से भर लो । त्याग के गीत को अपना लो । अपने इस छोटे से व्यक्तित्व में सारे संसार को समाविष्ट करलो । विश्व के साथ एक रस हो जाओ । हे मेरे छोटे जीवन तुम ऐसे बन जाओ कि तुम्हें देखकर फूल भी लज्जित हो जाएँ ।

हे मित्र ! यह तो माया का संसार है । मेरा और तेरा साथ तो कुछ देर का है । हे बन्धु ! यहाँ तो काँटों में रंगीले फूल दिखाई देते हैं । विपत्तियों में ही जीवन का उत्कर्ष झलकता है । हे मेरे प्यारे जीवन ! यह न भूलो कि तुम्हें इस संसार से वियोग सहन करना है ।

विशेष—बाल-जीवन की सरलता में प्रेम ने प्रवेश किया और वियोग के स्मृति-चिन्ह छोड़ विलीन हो गया । वियोग ने संसार की क्षणभंगुरता दिखाई । फिर क्यों कवियित्री ने जीवन को उसका उद्देश्य बताया ।

पन्त की 'परिवर्तन' ('अनित्य जग निष्ठुर' 'परिवर्तन' 'नित्य जग' 'आधुनिक कवि') कविता के साथ रखकर प्रस्तुत कविता को भली प्रकार समझा जा सकता है। पन्त तो 'नित्य जग' तक पहुँच गया किन्तु महादेवी वहाँ तक न पहुँच पाई क्योंकि उसके लिए नश्वरता ही सत्य है (बौद्ध दर्शन) इसलिए मनुष्य को गंभीरता और त्याग आदि अपनाना चाहिए।

१२

जिस दिन **रेखा !**

शब्दार्थ—नीरव=शान्त। अलकें=केश। मधु की बूँद=ओस की बूँद। पङ्कज=कमल। मनुहार=अनुनय। अवगुण्ठन=पर्दा। विधु=चन्द्रमा।

भावार्थ—कवियित्री कहती है कि जब से प्रकृति में प्रणय का आरम्भ हुआ तभी से मैं भी अपने प्रियतम को खोज रही हूँ।

जिस दिन केश सी किरणों ने शान्त तारों से यह कहा कि अब तुम सो जाओ, तुम्हारी सुन्दर आँखें नींद से बोझिल हो रही हैं; (यहाँ अप्रस्तुत में नायक-नायिका का वार्तालाप व्यंग्य है। तारा नायक है, किरण नायिका है। रात भर जागने के कारण नायक की आँखों में आलस्य छा जाता है तब नायिका उसे सोने के लिए कहती है और स्वयं उठकर घर के काम-काज में लग जाती है।)

जब प्रातःकाल फूलों पर ओस की बूँदें दिखाई देने लगीं, और जब सूर्य ने कमल की आँखों में अनुनय के दर्शन किए; (यहाँ सूर्य प्रियतम है और कमल नायिका);

जब शलभ दीपक में जल कर उसी में लय हो गया, और जब आकाश में बाल-मेघ गर्जने लगे;

जब चाँदनी में लिपटी निशा को चाँद ने देखा तभी से ही मैं अपने प्रियतम के पद चिह्न ढूँढ़ रही हूँ। (यहाँ निशा नायिका है, और चाँद नायक हैं।)

इन छन्दों में कवियित्री यह बतलाना चाहती है कि जिस प्रकार प्रकृति का यह प्रणय अनादि है उसी प्रकार मेरा प्रेम भी चिरकाल से चला आ रहा है।

आगे की पंक्तियों में वह यह बताती है कि मेरा प्रियतम से मिलन कभी भी नहीं हो पाता ।

मैं फूलों में पानी !

शब्दार्थ—बालारुण=प्रातः कालीन सूर्य । अविराम=निरन्तर । तारे=पुतलियाँ । अंजन=काजल ।

भावार्थ—मैं जब उन्हें फूल बनकर रोती हुई ढूँढ़ा करती हूँ तब तो वे प्रातःकालीन सूर्य में मुस्करा उठते हैं । और जब मैं सूर्य की किरणों को ही शरीर पर धारण करने के लिए मार्ग में धूल बन कर फैल जाती हूँ तब वह पुष्पों का सौरभ बनकर आकाश में उड़ जाते हैं । अभिप्राय: यह है कि मेरा उनसे मिलन कभी नहीं होता ।

वे मुझ से यह कहते हैं कि मैं उन्हें अपनी पुतली में देखूँ किन्तु यह कैसे ज्ञात हो कि मैं पुतली कैसे देखूँ ? और बिना पुतली देखे उन्हें देखा ही नहीं जा सकता ।

जब रात के समय ओस बरसा करती है तो मैं अविचल नेत्रों से उनके आने की प्रतीक्षा किया करती हूं । तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि रात मुझ से प्रश्न कर रही है कि मेरी पुतलियाँ किसे देख रही हैं । ('बरसा कर रोती सारे' से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि रात बीत जाने पर भी वे नहीं आते । जब कोई किसी की प्रतीक्षा किया करता है और आने वाला बहुत देर बीत जाने पर भी नहीं आता तब स्वभावतः देखने वाला प्रतीक्षा करने वाले से पूँछ ही बैठता है कि तुम किस की राह देख रहे हो ?)

अन्धकार इन पर काजल की चादर तान देता है । तब कुछ भी दिखाई नहीं देता । प्रभात के समय जब आलोक फैलता है तब सब कुछ दिखाई देने लगता है । ('सोने का पानी'—कहा जाता है कि किसी पक्षी के बच्चों की आँखें तभी खुलती हैं जब उन पर सोना फेरा जाता है ।)

इन पर सौरभ बन जाना !

शब्दार्थ—सौरभ की साँसें=सुगन्धित पवन । झिप-झिप=बन्द हो-होकर । जर्जर=दुर्बल ।

भावार्थ—सुगन्धि से लदा हुआ पवन आता है किन्तु मेरी आँखों पर उसका कोई अनुकूल प्रभाव नहीं होता। ये तो निरन्तर रोती रहती हैं और मधुर मिलन के स्वप्न देखा करती हैं। रानियों पर पुष्प न्योछावर किए जाते हैं। उसी प्रकार स्वप्न लोक की रानियों—इन आँखों—पर भी सुगन्धित पवन न्योछावर होता है किन्तु इन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कितनी पतझरें बीत गईं, कितनी बहारें बीत गईं किन्तु मेरी मधुर पीड़ा का तो किसी को ज्ञान भी नहीं हुआ। फिर उसे दूर करने का प्रयत्न कैसे संभव हो सकता था।

आँखें अब थककर बन्द होने लगी हैं। बन्द होती हुई आँखे अब कहती हैं कि यह कैसी अजीब बात है। अब हम प्रियतम से और अधिक आँख-मिचौनी नहीं खेलेंगी। अब तो हम उनके दर्शन करके ही रहेंगी।

तभी धुँधली विस्मृति कल्पित सुखों को अपने में छिपाकर मेरे प्राणों पर छा गई। मैं बेसुध हो गई। किन्तु उस अचेतन अवस्था में भी मिलन के स्वप्न नष्ट नहीं हुए थे वरन अव्यक्त रूप से वर्त्तमान थे।

कवियित्री अपनी चेतना से कहती है कि जब मेरे प्रियतम सपना बनकर आएँ, तो तुम सदैव के लिए सो जाना ताकि यह मिलन का सपना कभी भी न टूटे। स्वप्न में मिलन की कामना करना बहुत पुरानी भावना है।

१३

[एक मुस्काते फूल पर यह कविता लिखी गई है।]

मधुरिमा के **मुस्काते फूल !**

शब्दार्थ—मधुरिमा=माधुर्य्य, लावण्य। मधु=पुष्प रस। सुधा=अमृत। सुषमा=परम सौंदर्य। अभिराम=आकर्षक। तारकों से=तारों से। बान=स्वभाव। स्निग्ध=प्रेम भरी। मकरन्द=पुष्प रस। रजत किरण=चाँदी की किरणें, चन्द्र-किरण। पखार=धोकर। कोष=खजाना। मंजु=सुन्दर।

भावार्थ—माधुर्य्य और रस के अवतार, अमृत और परम सौंदर्य के समान आकर्षक, तारों के समान शान्त और अबोध हे कमल पुष्प ! तुम मुस्कराने का स्वभाव लेकर इस कठोर संसार में कैसे आ गए हो ?

भीगी-भीगी रात्रि से चाँदनी के समान शुभ्र हँसी लेकर, अङ्ग-अङ्ग को लावण्य से भरकर, नए पल्लव के घूँघट में छिपे हुए, अभिनव पुष्प रस लेकर, हे स्वर्गीय वैभव का सन्देश देने वाले फूल ! तुमने यह संसार कैसे ढूँढ़ लिया ?

चन्द्रमा की चाँदी सी किरणों से अपने नेत्रों को धोकर अनुपम सुगन्धि की राशि लेकर, रस की छलकती हुई निधि लेकर तुम अकेले ही इस पार चले आए हो । हे छोटे से हँसते हुए सुमन ! क्या तुम रास्ता भूल कर इधर आ निकले हो ? वैसे तो यह स्थान तुम्हारे रहने योग्य नहीं है क्योंकि तुम कोमल हो, सुन्दर हो, रस भरे हो, और यह संसार निष्ठुर है, कुरूप है और नीरस है ।

उषा के / के संसार !

शब्दार्थ—आरक्त=लाल । उन्माद=मस्ती । 'उषा के···उन्माद'=उषा का सुनहला प्रकाश फूटते ही तू अपनी मस्ती में खिल उठता है । तारों—प्राण= छिपते हुए तारों को देखकर । हेरती है=देखती है । सौरभ की हाट=सुगन्धि की लहरें । कोर=कोना । अभिनव=नवीन । कारागार=जेल, बन्धन । सम्मोहन राग=मोहक गीत ।

भावार्थ—उषा की सुनहली आभा फूटते ही तुम अपनी मस्ती में झूमने लगते हो । छिपते हुए तारों को देखकर न जाने तुम्हें क्या याद आ जाता है ? किसी दूसरी वस्तु को मिटते हुए देखकर अपने नाश का दृश्य भी आँखों के सामने आ जाता है । फूल जब तारों को विलीन होते देखता है तो उसे अपना अन्त भी याद आ जाता है और वह उदास सा हो जाता है । यह सुगंधि की लहरें किस निष्ठुर की राह देख रही हैं । तुम किस की प्रतीक्षा में खड़े हुए हो ? (कवियित्री को पुष्प भी किसी की प्रतीक्षा करता हुआ दिखाई देता है । अन्तिम चार पंक्तियों में पुष्प के वर्णन में कवियित्री की अपनी छाया है ।)

चाँदनी से अपने वैभव को मिटाकर और अपने अनुपम यौवन को लुटाकर तुम्हारे नेत्रों की कोर किस बीते दृश्य की ओर देख रही है ? तुम संभवतः अपने प्रेम के बीते क्षणों को याद कर रहे हो । किन्तु क्या तुम्हें मालूम है कि तुम्हारा यह नवीन प्रेम ही किसी दिन तुम्हारे लिए बन्धन हो जाएगा । इस वर्णन में पूर्णतः कवियित्री की भावना की छाप दिखाई देती है । नारी प्रेम करती है ।

आवेश में वह अपना यौवन और सौंदर्य सब कुछ अपने प्रियतम को अर्पण कर देती है। बार-बार बीते मिलन के क्षणों को याद किया करती है किन्तु आगे चलकर यह प्रेम हो वियोग की दारुण अवस्था में उसके लिए एक बन्धन बन जाता है।

ऐसा कौन-सा रमणीय गीत है जो तुम्हें यहाँ खींच लाया ? कौन है वह देवता जिसने तुम्हें इस नश्वर संसार में भेजा है ? अब तुम इस संसार में आ ही गए हो तो हे भोले फूल ? काँटों के बीच में रहकर भी तुम सदैव मुस्कराते रहो।

विशेष—इसी छन्द में समासोक्ति द्वारा अप्रस्तुत नायक-नायिका के प्रेम की ओर संकेत किया गया है।

अन्तिम दो पंक्तियों में समासोक्ति की छाया दिखाई देती है। अप्रस्तुत पक्ष यह है कि जब कोमल शरीर लिए ही मनुष्य यहाँ आ ही गया है तो उसे दुःखों में भी हँसते रहना चाहिए।

१४

वे मुस्काते .... **अधिकार।**

शब्दार्थ—नीलम के मेघ=नीलम सी रमणीय घटायें। वेसुध पीड़ा= बेसुध करने वाली पीड़ा। अवसाद=दुःख।

भावार्थ—महादेवी को उस स्वर्ग की कामना नहीं है जिसको प्रत्येक वस्तु सनातन है, बस वह तो अपनी नश्वरता में ही प्रसन्न हैं।

जहाँ ऐसे पुष्प खिलते हैं जो कभी मुरझाते ही नहीं, जहाँ ऐसे तारों के दीपक चमका करते हैं जो कभी विलीन नहीं होते;

जहाँ ऐसी नीलम सी सुन्दर घटाएँ घिरती हैं जो कभी बरस कर रिक्त नहीं होती, जहाँ बसन्त का असीम वैभव छिपता ही नहीं;

जहाँ के वासियों के नेत्रों में आँसू रूपी मोती नहीं बनते और जो इसीलिए सूने-सूने रहते हैं; जहाँ के वासियों को कभी व्यथा नहीं सताती;

तेरा लोक तो ऐसा है जिसमें सभी वस्तुएँ अमर और अनश्वर हैं। तेरे लोक में न तो पीड़ा है, न दुःख है, न जलन है और न मरण है। तेरे संसार में तो निर्माण है, नाश की हल्की सी भी छाया नहीं है।

क्या तेरी दया के फलस्वरूप ऐसा देवताओं का लोक मुझे प्राप्त होगा ? नहीं, नहीं, हे देव ! मुझे तो यह नश्वर देह ही भली है मैं अमर नहीं होना चाहती।

विशेष—कवियित्री को गत्यात्यक जीवन ही प्रिय है। स्वर्ग के जीवन में गति नहीं इसलिए उसे वह पसन्द नहीं है।

१५

[प्रस्तुत कविता में प्रभात का वर्णन है।]

चुभते ही **कुहर-म्लान !**

शब्दार्थ—अरुण बान=लाल तीर, सुनहली किरण। सजल-गान=शोभा, आकर्षण। कनक रश्मि=सुनहली किरण। तम सिन्धु=अन्धकार का सागर। बुद्बुद=बुलबुला। बिहग=पक्षी। प्रवाल=मूँगा जो लाल वर्ण का होता है। कुहर-म्लान=कुहरे के कारण काली।

भावार्थ—प्रभात के समय सूर्य की पहली किरण के बिखरते ही प्रकृति के कण-कण से शोभा और आकर्षण रस के झरने के समान फूट पड़ता है। चन्द्रमा की किरणों में सागर लहरा उठता है। अन्धकार रूपी सागर सूर्य की सुनहली किरणों में हिलोरें लेने लगता है। (अन्धकार रूपी सागर के जगाने और हिलोरें लेने से प्राणियों के जागरण और जीवन की सक्रियता की ओर संकेत है।) पक्षियों के मीठे स्वर अन्धकार रूपी सागर में बुलबुलों के समान बहने लगते हैं। तरंगित सागर में बुलबुले उठते हैं और विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रभात वेला में पक्षियों के लघु स्वर बार-बार सुनाई देते रहते हैं। कुहरे से आच्छादित होने के कारण काली दिखाई देने वाली क्षितिज की रेखा मूँगे के समान लाल आभा से युक्त हो जाती है।

'हिलोर' से पवन के झोंकों की ओर संकेत है जो प्रभातकाल में तरंगित होने लगते हैं।

नव कुन्द निशि-मूक तान !

शब्दार्थ—कुन्द-कुसुम=कुन्द का फूल जो सफेद रङ्ग का होता है। मेघ पुंज=बादलों का समूह। इन्द्रधनुषी वितान=इन्द्र धनुष के समान सतरङ्गी शामियाने। हिम विन्दु=ओस की बूँद। तिमिर गात=काला शरीर। निशि-मूक तान=वह तान जो रात में बन्द थी।

भावार्थ—नवीन कुन्द के पुष्पों के समान सफेद बादलों के समूह सूर्य की किरणों के सम्पर्क से इन्द्रधनुष जैसे विविध रङ्गों वाले शामियाने के समान दिखाई दे रहे हैं। कोमल कलियों के चटकने की ध्वनि की ताल पर ओस की बूँदें नृत्य कर रही हैं। प्रात:कालीन स्वर्णिम आलोक में अपने काले शरीर को धो-धोकर भंवरे रात में बन्द की हुई गुंजार को फिर से दुहराने लगे हैं।

इस छन्द में नृत्य-गान की महफिल का चित्र अंकित किया गया है। शामियाने के नीचे ही नाच-गान हुआ करता है।

सौरभ का पल्लव अजान !

शब्दार्थ—सौरभ जाल=जिस प्रकार बाल बिखर कर चारों ओर फैल जाते हैं उसी प्रकार सुगन्धि चारों और लहरा रही है। समीर परियाँ=वायु रूपी परियाँ। केसर=पुष्प का वह भाग जो सींक के समान होता है। मर्मर-अजान=वायु के झोकों से हिलने पर पल्लवों से मर्मर ध्वनि उत्पन्न होने लगती है।

भावार्थ—समीर रूपी परियाँ सुगन्धि रूपी बालों को बिखरा कर क्रीड़ा कर रही हैं। तितली के नन्हें बच्चे मस्त होकर गीली केसर का रस पान कर रहे हैं। पल्लव वायु के झोकों में हिलकर एक मधुर मर्मर-ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

फैला अपने सुधिविहान !

शब्दार्थ—मृदु=कोमल। निशि-क्षितिज=रात्रिरूपी क्षितिज के पार। कंजकोष=कमल के समान नेत्र। चितेरा=चित्रकार। सुधिविहान=स्मृति को जगाने वाला प्रभात।

भावार्थ—नींद अपने स्वप्न रूपी पंखों को फैला कर रात रूपी क्षितिज के पार चली गई है। आकाश में उड़ते हुए पक्षी दूर निकल जाने पर दिखाई नहीं

देते। इस प्रकार प्रातःकाल निद्रा का कोई प्रभाव नहीं रहा। अध खुले कमल के समान अलसाए हुए नेत्रों में नींद का खुमार छाया हुआ है। स्मृतियों को जगा देने वाला यह प्रभात एक कुशल चित्रकार के समान आँसू और हँसी से इस हृदय को रङ्ग रहा है। प्रभातकाल मधुर और निष्ठुर स्मृतियों को जगा देता है।

विशेष—प्रस्तुत पद कवियित्री के प्रकृति-वर्णन का सुन्दर उदाहरण है। साहृश्यमूलक अलंकारों का मधुर संयत प्रयोग हुआ है। प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन हुआ है। किन्तु अन्तिम पंक्ति में प्रभाव का उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है।

१६

शून्यता चित्राधार ?

शब्दार्थ—स्वप्निल घन=सपनों के बादल। अम्लान=सात्विक। अवगुण्ठन=पर्दा। कनक=सोना। मोती सी रात=मोती सी शुभ्र चाँदनी रात। चित्र-धार=चित्रों का आधार, चित्रकार।

भावार्थ—जिस प्रकार नींद के सूनेपन में सपनों के बादल घिर आते हैं, जिस प्रकार कोमल कली मकरन्द से भरे पुष्प का रूप धारण कर पूर्णता प्राप्त करती है; (शून्यता और 'घन' से शून्य आकाश में बादलों के घिर आने की ओर भी संकेत है।)

उसी प्रकार सबसे पहले किसके हृदय में सूनेपन की अकलुष अनुभूति हुई और किसने अचानक ही विश्वरूपी मूर्ति का निर्माण कर डाला? (प्रसिद्ध ही है कि आदि पुरुष ने कहा था "एकांकी न रमते।")

वह आदि पुरुष काल और सीमा से परे था। किन्तु प्रतिभा तो काल और सीमा के भीतर ही होती है। अतः कवियित्री कहती है कि किसने काल और सीमा के भीतर मोम सी स्वच्छ पीड़ा लेकर उसे हँसी और रुदन की जाली पहना दी। (मोमबत्ती जब जलाई जाती है तो उसके चारों ओर ज्योति की

जाली सी तन जाती है। इसी प्रकार पीड़ा के चारों ओर हँसी और रुदन की जाली है।)

वह कौन इस संसार के चित्रों का आधार है जो सोने से दिन, मोती सी चाँदनी रातें, स्वर्णिम संध्या, और अरुणिम प्रात: के चित्र बनाता तथा मिटाता है ? (रहस्य-संकेत मधुर और स्वाभाविक है।)

शून्य नभ में प्रतिपल ?

शब्दार्थ—शून्य—चुम्बन=शून्य आकाश में जब रात के समय अन्धकार घिर आता है। उडुगण=तारागण। उजियाले की फूँक=प्रकाश रूपी फूँक। रजत प्याला=चाँदी का प्याला, चाँद। रजनी बाल=रात का प्रथम प्रहर। वात=वायु। अवदात=उज्ज्वल। अरुणिमा=लालिमा। रंजितकर=रँगकर। अलि=भ्रमर। कली–मुस्कान=भ्रमर की गुंजार सुनकर कली मुस्करा उठती है और फूल बन जाती है। विकल सपनों के हार=ओस की बूँदें।

भावार्थ—रात के समय जब आकाश पर अन्धकार घिरने लगता है तो अनन्त ताराओं के दीपक जल उठते हैं। प्रभात कालीन आलोक रूपी फूँक उन्हें क्यों बुझा देती है ? (जिस प्रकार फूँक मारने से दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार आलोक होने पर तारे छिप जाते हैं।) ऐसा क्यों होता है ?

रात होते ही सब सो जाते हैं। मानों रात चाँद के रजत-प्याले में भर-भर कर सब को नींद बाँट देती है। किन्तु फिर वह ओस के आँसू रोती है। नींद लेकर बाँटने के लिए वह किसे आँसू रूपी कीमत देती है ?

प्रभात काल में जब वायु रात के समय आँसुओं को बिखेर देती है, जब वायु के झोंके ओस की बूँदों को सुखा देते हैं, तो उधर लालिमा लिए हुए बाल सूर्य क्यों उदित होता है ?

जब भँवरे की गुंजार सुनकर कली खिलकर फूल बन जाती है, तब सपनों के समान ओस की लड़ियाँ क्यों बिखरने लगती हैं ?

गुलालों से जयहार ?

शब्दार्थ—रवि का पथ=आकाश। पहला दीप=प्रथम तारा रूपी दीपक। स्वर्ण पराग=सुनहली सुगन्धि, अवाध प्रसन्नता। सृजन=निर्माण। श्वास=साँस

भीतर लेना। उच्छवास=सांस बाहर निकालना। व्यथा सिक्त=दर्द भरी। विराट संगीत=संसार रूपी विराट संगीत। अनुताप=क्रोध। अवसान=अन्त। नव्य विधान=नव-निर्माण।

भावार्थ—आकाश को गुलाल से लाल रंग में रंगकर, पश्चिम दिशा में प्रथम तारे रूपी दीपक को जलाकर जब सुहागिनी संध्या हँसती है और उसके नयनों में सौन्दर्य और हर्ष झलकता है;

तब अन्धकार की एक लहर उसे कहाँ विलीन कर देती है? अन्धेरा छाते ही सन्ध्या सुन्दरी कहाँ उड़ जाती है? उसका कार्य निरन्तर सौन्दर्य का निर्माण और उसका ध्वंस ही संसार का श्वास और उच्छ्वास है। अन्तिम पंक्ति में क्रम-भंग दोष है। उच्छ्वास निर्माण है और श्वास ध्वंस।

किस को वेदना भरी दृष्टि प्रकृति के कण-कण में चेतना फूँक देती है? और कौन उस कण-कण की सक्रियता को सँजोकर इस संसार रूपी विराट संगीत का निर्माण करता है?

और किसका क्रोध प्रलय के रूप में प्रकट होकर इस सृष्टि को मिटा देता है?

किसी वस्तु के निर्माण में ही उसका अन्त निहित है। जिस वस्तु का जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है। और वस्तु के नाश हो जाने पर नवीन सृजन होता है। जिसका नाश हुआ है उसका जन्म अवश्यम्भावी है। क्या यह संसार ऐसा सूत्र है जिसमें सुख-दु:ख और विजय तथा पराजय निहित हैं? पन्त की 'सुख-दु:ख' कविता में यही भाव मिलता है।

विशेष—प्रस्तुत कविता में उपनिषद् दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। रहस्यात्मक संकेत मधुर है।

१७

रजत रश्मियों ... **बरसा आता!**

शब्दार्थ—रजत रश्मि=चाँद की किरण। निदाघ से मानस=गर्मी में सूखे हुए हृदय रूपी मानसरोवर में। मर्म=रहस्य। संसृति=संसार। पाहुन=मेहमान। विश्वभिक्षुक=संसार रूपी भिखारी।

भावार्थ—(दु:ख) चाँद की किरणों की छाया में काले मेघ के समान आता है और गर्मी में सूखे हुए मान सरोवर के समान इस हृदय में करुणा जल भर जाता है। मेघ सूखे तालाबों को जल से भर देते हैं। दु:ख मेरे हृदय को करुणा से भर देता है।

दु:ख में जीवन का रहस्य छिपा है। सभी चेष्टाओं का आदि कारण वही है। अनेकता में एकता की दृढ़ स्थापना करने वाला भी वही है। मेरे जीवन के सूने संसार में वह करुणा का विशाल प्रभाव डाल जाता है।

वह मेरे हृदय में अतिथि बनकर आता है। और मेरे मन से कहता है कि अब तू संकोच मत कर। तब वह मेरे मन के खज़ाने को देख लेता है। फिर मेरे नेत्र रूपी कपाटों को खोलकर मेरे खज़ाने को हँसते हुए संसार रूपी भिखारी को लुटा देता है। आँसू के रूप में ही मेरे हृदय की पूँजी लटा दी जाती है। (विपत्ति के आने पर ही मनुष्य के गुणों की सच्ची परख होती है—निधियाँ लेता गिन)

वह जग है   आमन्त्रित कर लाता !

शब्दार्थ—मूक=शान्त। विनिमय=आदान-प्रदान। मृग मरीचिका=मृग जल। रुद्ध हृदय कर=मोहित हृदय को वश में कर लेता है। पतझर=दु:ख। उर्वर=उपजाऊ, महान।

भावार्थ—संसार की रचना तो आश्चर्य मय है। इसमें कितने ही मुसाफिर चुपचाप आते हैं और चले जाते हैं किन्तु एक दूसरे से कोई भी परिचित नहीं होता। फिर भी हम यहाँ परस्पर आदान-प्रदान देखते हैं। यह भी उन्हीं पथिकों का निर्देश है जिसके बिना यह विनिमय असम्भव है।

जिस प्रकार कोई मोहित प्यासा व्यक्ति मृग-जल को देखकर अपनी प्यास मिटाने के लिए लपकता है उसी प्रकार सुख की इच्छा मनुष्य के मोहित हृदय को खींच कर उसे इस संसार की मृग मरीचिका में लिए चली जाती है। सुख की कामना में भटता हुआ मनुष्य भी यही कहता है कि मैं तो बसंत हूँ, मेरा पतझर से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। वह अपने सुख में यह भूल जाता है कि सुख के पश्चात् दु:ख भी भोगना आवश्यक है। सुख प्राप्ति का ऐसा प्रयास व्यर्थ है।

दुःख के आने पर मानव मात्र की आँखों से आँसू के झरने बहने लगते हैं। जीवन महिमा से मण्डित हो उठता है। वह दुःख इस छोटे से हृदय में अनन्त संसार को समाविष्ट कर देता है। दुःख आने पर अपने और पराए का भेद नहीं रहता। सारा संसार ही निज की अभिव्यक्ति दिखाई देने लगता है। स्पष्टतः यहाँ महादेवी ने दुःख का प्रयोग सामान्य अर्थ में नहीं किया है वरन् उसका अर्थ है करूणा, जो हृदय की एक उदात्त प्रवृत्ति है।

विशेष—इस गीत में यह स्पष्ट है कि महादेवी के लिए दुःख का वही महत्व है जो पन्त के लिए स्नेह का है। पिछले गीत में महादेवी ने दुःख से ही संसार की उत्पत्ति मानी है।

१८

चिर तृप्ति **जावे मन !**

शब्दार्थ—तृप्ति=पूर्ति। विरक्ति=उदासीनता। फिर जावे=विरक्त हो जाए।

भावार्थ—यदि मनुष्य की प्रत्येक इच्छा सदैव पूर्ण होती जाए तो उसका जीवन आकर्षण हीन हो जाता है। जब हमारी अभिलाषा शान्त हो जाती है तो हमारा मन इच्छित वस्तु से विमुख हो जाता है। मेघों की सफलता इसी में है कि वह जल भर कर उसे बरसा दें। अमर सुख की प्राप्ति इसी में है कि हमारा मन उस सुख से उदासीन हो जाए। (इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि महादेवी भी अव्यय सुख की कामना करती हैं। किन्तु उनके लिए असीम आनन्द असंगता में

चिर ध्येय **सागर !**

शब्दार्थ—ध्येय=उद्देश्य। विभूति=राख।

भावार्थ—जलन का उद्देश्य क्या है ? यही कि वस्तु ठंडी राख बन जाए। लकड़ी जल कर शीतल भस्म बन जाती है। इसी प्रकार दुःख में जलने वाले का उद्देश्य यही है कि निरन्तर जलते रहकर एक दिन वह जलन का इतना अभ्यस्त हो जाए कि उसे जलन की अनुभूति ही न हो। व्यथा की अन्तिम सीमा में पहुँचकर दुःख ही मनुष्य के लिए सुख बन जाता है। इसलिए हे देव ! तुम जीवन में तृप्ति का एक कण भी न देना। मेरी इच्छाएँ सदैव प्यासी रहें।

निरन्तर आँसू बरसाती हुई मेरी आँखों को दर्शन की प्यास से पीड़ित रहने दो। (यह प्रसिद्ध ही है कि सागर के जल से किसी की प्यास नहीं बुझती क्योंकि जल खारा है। आँसू भी खारे ही होते हैं इसलिए 'आँसू का सागर' प्रयोग बहुत सुन्दर बन पड़ा है।)

तुम मानस पाऊँ पार ?

शब्दार्थ—मानस=हृदय। अवगुंठन=पर्दा। मिस=बहाने से। सित असित मुकुरता=सफेद और काली चमक, पुतली जिसका रंग सफेद और काला होता है, तथा जिसमें सभी वस्तुएँ प्रतिबिम्बित होती हैं।

भावार्थ— तुम दुःख के पर्दे में छिपकर मेरे हृदय में बस जाओ। जब मैं खोजने निकलूँगी तो मैं समस्त प्रकृति से परिचित हो जाऊँगी। तुम मेरी आँसू भरी आँखों की पुतली बन जाओ ताकि मैं सब कुछ तुम्हारी सहायता से देखूँ पर तुम्हें न देख पाऊँ। (यह भावना अत्यन्त ही चमत्कारपूर्ण है। कवियित्री की यह कामना भी है कि उसका आराध्य उसमें समाया रहे किन्तु वह उसके दर्शन भी नहीं चाहती। प्रियतम का सान्निध्य भी हो और विरह की मधुर जलन भी। दोनों में ही कवियित्री को आनन्द प्राप्त होता है।)

चिर मिलन फीके !

शब्दार्थ—पुलिन=किनारे। युग=दोनों। अचल=स्थिर। फीके=असफल।

भावार्थ— महादेवी कामना करती है कि मेरा जीवन विरह और मिलन रूपी दो कूलों के बीच में बहती हुई नदी के समान हो। जिस प्रकार नदी प्रतिक्षण दोनों किनारों को छूते हुए चलती है, उसी प्रकार मेरा जीवन भी एक साथ मिलन और विरह की अनुभूति करता रहे। प्रियतम का सान्निध्य तो मिलन है किन्तु उसके दर्शनों का न होना विरह का कारण है। जिस प्रकार यह स्थिर क्षितिज देखने में पास दिखाई देता है किन्तु जैसे-जैसे उस तक प चने का प्रयत्य किया जाता है वह दूर होता जाता है और कभी भी व्यक्ति उसे छू नहीं सकता इसी प्रकार हे प्रियतम ! तुम भी मेरे निकट रहो। किन्तु मैं तुम से भी कभी मिल न पाऊँ। यदि मिलने का प्रयत्न भी करूँ तो उसमें असफल रहूँ।

द्रुत सीमा ।

शब्दार्थ—द्रुत=तेज उड़ने वाले । नभ=आकाश ।

भावार्थ—तीव्र गति से उड़ने वाले मेरे मन के लिए तुम अनन्त आकाश बन जाना । जिस प्रकार पक्षी चाहे कितने ही युगों तक आकाश में उड़ता रहे किन्तु वह उसके एक कोने का परिचय प्राप्त करने में भी असमर्थ रहता है । उसी प्रकार चाहे मेरा मन अनेक जीवनों में तुम्हें जानने का प्रयत्न करता रहे, किन्तु मैं तुम्हारे एक अंश को भी न जान पाऊँ । यदि तुम निरन्तर प्रतीक्षा करने वाले हो तो मैं धीरे-धीरे चलने वाले वियोगी का चरण हूँ । चाहे निरन्तर चलते-चलते मेरे जीवन का अन्त हो जाए किन्तु मैं उस वियोग के मार्ग की सीमा न जान सकूँ । अभिप्राय: यह है कि मेरा तुम्हारा मिलन कभी न हो ।

तुम हो पुलक सा !

शब्दार्थ—प्रभात की चितवन=उषाकाल का प्रकाश । विधुर=वियोगी ।

भावार्थ—तुम यदि उषाकाल का प्रकाश बनो तो मैं वियोगिनी रजनी बन जाऊँ । जिस प्रकार रजनी प्रभात से मिलन के लिए रोती रहती है किन्तु प्रभात होते ही छिप जाती है, उसी प्रकार मैं भी वियोग में रोती रहूँ किन्तु जब मिलन का अवसर आए तो मैं समाप्त हो जाऊँ । मिलन का जो मीठा अवसर है वह भी व्यथा की टीस सा ही बनकर आए जिससे मेरे ओठों पर विरह की हँसी छा जाए और प्राणों में पीर की पुलक समा जाए । (मिलन के समय में वियोगिनी हँसती है, पुलकित होती है किन्तु कवियित्री विरह की हँसी और पीर की पुलक की कामना करती है ।)

पाने में तुम भी दो छोरें !

शब्दार्थ—तृष्णा=इच्छा । विषाद के मोती=दुःख के आँसू । चाँदी सी स्मिति के डोरे=शुभ्र हँसी के डोरे । लक्ष्य-क्षितिज=उद्देश्य रूपी क्षितिज । आलोक=प्रकाश । तिमिर=अन्धकार ।

भावार्थ—तुम से मिलन के प्रयत्न में मैं तुम्हें खो दूँ और तुम्हारे वियोग में ही तुम्हारा मिलन समझूँ । मेरा जीवन एक अमर प्यास बन जाए । और मेरी अमिट अभिलाषा यही हो कि मैं मिट जाऊँ । चाँदी के समान शुभ्र हँसी के डोरों में आँसू के मोती पिरोती रहूँ । मेरे आह्लाद से भी आँसू उमड़ते हों ।

मेरे उद्देश्य रूपी क्षितिज की सुख रूपी प्रकाश और दुःख रूपी अन्धकार की दो छोरें हों। मेरे जीवन में वियोग का अन्धकार भी है और मिलन का प्रकाश भी। किन्तु मिलन कभी भी पूर्ण न हो।

१६

कुमुद-दल **तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है ?**

शब्दार्थ—कुमुद-दल = कुमुदिनी के फूलों के समूह से। अनिल के निश्वास= पवन के झोंके। नैश तम = रात्रि के अन्धकार में। तड़ित = बिजली।

भावार्थ—रात के समय जब चाँद की किरणें कुमुद के फूलों के वियोग चिन्हों को अपने आँसुओं से धोती हैं, जब पवन के झोंके चलते हैं और भोली तारिकाएँ चकित सी दिखाई देती हैं तब दूर के बजते हुए संगीत के समान जो मुझे उस पार बुलाता है वह कौन है ?

प्रथम चार पंक्तियों में कोई निर्दिष्ट दृश्य आँखों के सामने खड़ा नहीं होता 'कुमुद के वेदना के दाग' क्या हैं, 'रश्मियों के आँसू' उन्हें कैसे धोते हैं इत्यादि वर्णन धूमिल हैं। इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि कवियित्री ने कुमुद और अनिल को नायक, तथा रश्मियों और तारिकाओं को नायिका के रूप में चित्रित किया है। किन्तु नायक-नायिका पक्ष भी सुस्पष्ट नहीं है। भावना उपचार-वक्रता में उलझ कर ही रह गई। 'उस पार' से अभिप्राय: है इस यथार्थ संसार से दूर किसी अलौकिक कल्पना के संसार में। प्रेमी-प्रेमिकाओं का संसार ही यहाँ वालों के लिए दूसरा किनारा हो सकता है।

जिस प्रकार मानव मन में दुःख घिर आता है और उसके जीवन में अन्धकार छा जाता है। उसी प्रकार जब रात्रि के घने अन्धकार में आकाश में घटाएँ छा जाती हैं, और जब टूटे हुए आँसुओं के हार के सुनहले मोतियों के समान जुगुनुओं की पंक्ति इधर-उधर बिखरी हुई दिखाई देती है—अचानक ही यहाँ-वहाँ जुगुनू चमक जाते हैं—तब बिजली में मुस्कुरा कर जो मेरे नयनों को बन्द कर देता है वह कौन है ? यह छन्द स्पष्ट एवं सुन्दर है।

अवनि-अम्बर **खोलता वह कौन है ?**

शब्दार्थ—अवनि-अम्बर = धरती और आकाश। रुपहली = चाँदी की।

मृदुल=कोमल। हिम के पुंज=बर्फ के खण्ड। ज्योत्सना=चाँदनी। रजत पारावार=चाँदी का सागर। सुरभि=सुगन्धि। कनक धारा=स्वर्ण निर्झर। मुकुल=कली। अर्घ्य=जल। स्वप्न-शाला=स्वप्न लोक। यवनिका=पर्दा।

भावार्थ—सीप में मोती होता है। यहाँ चाँदनी रात का वर्णन है। धरती और आकाश रूपी चाँदी की सीप में जब सागर तरल मोती के समान स्पन्दित होता है, और जब चाँदनी रूपी सफेद सागर में मेघ बर्फ खण्डों के समान तैरते हैं, तब सुगन्धि बन कर जो मुझे सुलाता है वह कौन है ? वह अज्ञात निद्रित व्यक्ति के उच्छ्वास को नहीं जान पाता।

इस छन्द में बहुत ही समृद्ध कल्पना के दर्शन होते हैं।

अब प्रभात का वर्णन आरम्भ होता है। प्रातःकाल गुलाब के फूलों पर पड़ी ओस की बूँदें सूखने लगती हैं। उसी प्रकार प्रातःकाल रूपी बच्चे के गुलाबी कपोल से नक्षत्र रूपी जल की बूँदें सूखने लगती हैं, और जब कलियाँ सुनहली किरणों में नहा कर सूर्य को मोती सी ओस की बूँदों का अर्घ्य देकर हँस उठती हैं, तब स्वप्न की रङ्गशाला में पर्दा डालकर जो मेरे नेत्रों को खोलता है वह कौन है ?

शिशुप्रात का कपोल=आकाश। "रश्मियों...अर्घ्य दे" स्नान करके ही सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है।

विशेष—महादेवी के इस गीत में जैसी जिज्ञासा व्यक्त हुई है वैसी ही पन्त की 'मौन निमन्त्रण' कविता में भी हुई है।

२०

किसी नक्षत्र ... मिलन प्रभात !

शब्दार्थ—नक्षत्र लोक=तारा। विश्व का शतदल=संसार रूपी कमल। निर्मम=निष्ठुर। अनिल=वायु।

भावार्थ—किसी तारे से टूटकर संसार रूपी कमल पर जो आँसू की बूँद गिर पड़ी है, और जिसका रूप तरल मोती के समान है, उसे न तो अपने जीवन के विषय में कुछ ज्ञान है और न ही वह अपना नाम जानती है, फिर भला वह अपना क्या परिचय दे।

'तरल-मोती'—मोती ठोस होता है। ओस की बूँद का आकार और शुभ्रता मोती सी होती है, किन्तु वह तरल होती है। इसीलिए कवियित्री ने ओस बिन्दु को 'तरल मोती' कहा है।

जब कोई निष्ठुर व्यक्ति वीणा आदि वाद्य बजाता है तब वायु के पंखों का सहारा लेकर वह स्वर अपने मूल वाद्य से बिछुड़ कर बहुत दूर पहुँच जाता है। जिस स्वर का जन्म ही विरह की रात में होता है, वह भला मिलन के प्रभात का क्या ज्ञान रख सकता है। जिसने दिन देखा ही नहीं है, जिसका जन्म ही रात में हुआ है, वह भला प्रभात के सौंदर्य को क्या जाने? स्वर का जन्म ही उसका वीणा के तारों से विछोह है। वह मिलन के माधुर्य को क्या जाने?

'निर्मम'—वह हाथ निष्ठुर है क्योंकि वह तार और स्वर में वियोग कर देता है।

'अनिल के चल पंख'—पक्षी पंखों के सहारे ही उड़कर दूर चले जाते हैं। वायु स्वर को दूर उड़ा ले जाती है। इसीलिए वायु को स्वरों का चंचल पङ्ख कहा गया है।

चाह शैशव पहचान!

शब्दार्थ—चाह=प्रेम। शैशव=बचपन। पलक-दोलों में=पलक रूपी झूलों में। एक ही साँस=एक ही साँस में जिसका आरम्भ और अन्त छिपा है। एक ही क्षण में जिसका उदय और अस्त हो जाता है। वारिद-घोष=मेघ-गर्जन।

भावार्थ—जिस प्रकार बचपन एक क्षण भर के लिए नयनों में प्रकट होता है और फिर विलीन होकर आँखों की प्रफुल्लता को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार प्रेम भी एक पल भर के लिए नेत्र रूपी झूले में झूलने के उपरान्त आँसुओं के रूप में गालों पर बहकर नयनरूपी फूलों को झुलसा जाता है। वह प्रेम जिसका आरम्भ ही उसका अन्त हो गया, वह अपनी बीती कहानी का क्या वर्णन करे।

यहाँ महादेवी ने 'चाह' शब्द का प्रयोग पुल्लिग में किया है। यह व्याकरण के नियमों के विरुद्ध है।

"गया कुम्हला फूल—" वृद्धावस्था के आने पर आँख धँस जाती हैं वियोग में रो-रोकर भी आँखों की शोभा नष्ट हो जाती है।

जब सारे 'संसार' को सजग कर मेघ गर्जन समाप्त हो जाती है, तो उसी की प्रतिध्वनि धरती से विवश सी होकर टकराती है। उस प्रतिध्वनि को तो अपने बास तक का भी ज्ञान, नहीं है। फिर वह अपने विषय में क्या बता सकती है।

सिन्धु को उपहार !

शब्दार्थ—सिंधु=सागर। बीचि-विलास=लहरों की क्रीड़ा। बुद्बुद=बुलबुले के समान जीवन। अभिराम=सुन्दर। अभिसार=मिलना। सुभग=सुन्दर।

भावार्थ—हे देव ! जो लहरें निरन्तर बना और बिगड़ा करती हैं वे सागर को अपने विषय में क्या बता सकती हैं ? जिनका अपना जीवन ही एक क्षण का है, वह जीवन का परिचय क्या देंगीं ? इसी प्रकार मेरा जीवन भी बुलबुले के समान क्षण भंगुर है। उसकी उत्पत्ति भी तुम्हीं में है। और उसका नाश भी तुम्हीं में है। फिर हे सुन्दर देवता ! तुम मुझे संसार के रहस्य को समझने का असंभव कार्य क्यों देते हो ? जब मेरा अपना जीवन ही क्षणिक है फिर अपार संसार के रहस्यों को मैं क्या समझूँगी।

मैं तुम्हारे ऊच्छ्वास के समान हूँ। जिस प्रकार उच्छ्वास का जन्म ही उसका मुख से वियोग है उसी प्रकार मेरा जन्म भी तुम से वियोग ही है। पवन पुष्पों से सुगन्धि चुराकर लाता है। यह संसार का पवन तुम से जिस पीड़ा को उड़ाकर ले आया है, मैं उसी पीड़ा की प्रथम विभूति हूँ। सबसे पहले वह पीड़ा मुझी में साकार हो गई है। हे देव ! तुम मुझे बार-बार निराशा का आलिंगन करने के लिए क्यों जन्म देकर त्याग देते हों ?

बच्चे के रोने का कोई अर्थ नहीं है। किन्तु उसके रुदन में ही माँ की पुकार वर्तमान है। बच्चा रोता है , सब कहते हैं कि यह माँ के पास जाना चाहता है। कोई चित्र देख कर यह विश्वास सहज ही हो जाता है कि किसी

ने इस चित्र को बनाया होगा। जड़ चित्र ही अपने बनाने वाले चित्रकार का परिचय देता है। इसी प्रकार मेरे नयनों से जो आँसू की झड़ी लगी है यही इस बात का सन्देश देती है कि यह तुम्हारा उपहार है। मेरे आँसू जब उपहार हैं तो इस उपहार का देने वाला भी कोई अवश्य होगा और यह दान तुम्हीं ने मुझे दिया है।

तुहिन अन्वेषण!

शब्दार्थ—तुहिन=शीतलता। पुलिन=किनारे। छविमान=शोभाशाली। मधुदिन=बसन्त का दिन। स्वप्न की प्रतिमा=कल्पना की मूर्ति, सुन्दर रचना। विस्मृत=भूले हुए। अन्वेषण=खोज।

भावार्थ—इस संसार में यह अबोध जीवन वैसा ही है जैसे कि शीतलता रूपी किनारों पर बसन्त की दिवस रूपी लहर आये और फिर विलीन हो जाए। जिस प्रकार लहर उठती है, और किनारे पर आकर नष्ट हो जाती है उसी प्रकार बसन्त का सुखद दिवस आता है फिर बीत जाता है। जीवन में भी ऐसी ही क्षणिकता है। यह जीवन ऐसा है मानो कल्पना की सुन्दर मूर्ति को वेदना के रङ्ग में रंग दिया हो। जीवन सुन्दर है किन्तु व्यथा से पूरित भी है। इसमें स्वप्न भी है और जागरण भी—एकान्तिक विश्राम एवं सम्मोहन भी और संघर्ष भी। यह किसी भूली हुई सम्पत्ति को छिपाए हुए किसका अन्वेषण कर रहा है? भूली हुई संपत्ति है अज्ञात प्रियतम जिसने इसे जन्म दिया है। अन्वेषण का लक्ष्य भी वही है। अभिव्यक्ति रहस्यात्मक है।

धूलि कंकण के सन्धान।

शब्दार्थ—धूलि······चाह=जीवन रज के समान क्षुद्र है किन्तु इसकी इच्छाएँ आकाश सी विराट हैं। जलधि=सागर। स्पंदन=कम्पन। अनुताप=व्यथा। अविराम=निरन्तर। सन्धान=लक्ष्य, केन्द्र।

भावार्थ—रज के समान क्षुद्र जीवन में आकाश सी विराट आकांक्षाएँ रहती हैं। बूँद से लघु-जीवन में पीड़ा का सागर छिपा पड़ा है। यह जीवन वैसे तो एक लहर के समान है किन्तु इसमें असंख्य स्वप्न बना करते हैं। यह क्षणिक है किन्तु असफलताओं के बोझ से लदा हुआ है। इसकी साँसों में व्यथा की जलन है। इसमें निरन्तर कल्पनाएँ उठा करती हैं। इसके प्राणों में शापों

की जलन और वेदनाओं का माधुर्य भी है। इसके नन्हे प्राण हर्ष और अवसाद के केन्द्र हैं।

भरे उर के ... साकार ?

शब्दार्थ—छवि का मधुमास=शोभा का बसन्त, मानसिक सौंदर्य। पावस=वर्षा। नभ=आकाश। अनल=आग। निर्भर वीचि-विलास=सघन लहरों की क्रीड़ा। निर्भर=सघन।

भावार्थ—इसके हृदय में वसंत सा गुणों का उत्कर्ष है। नयनों में नीर है। ओठों पर हँसी है। किसका वर्षा सा प्रेम इन प्राणों में संचित होता जा रहा है? प्राणों में प्यार का संचार हो रहा है इसलिए ओठों पर हँसी हैं। किन्तु प्रेम में वियोग के आँसू भी मिलते हैं। इसलिए वह प्यार पावस रूप है। नीले आकाश की व्यापकता, आग की कुछ चिङ्गारियाँ, सागर की सघन तरंगें, धीर मलय पवन के उच्छ्वास, और धरती के परमाणु लेकर, किसने मानव का निर्माण किया है? जीवन की भौतिक और मानसिक सीमाएँ आकाश सी विराट हैं। चिङ्गारियाँ जीवन के दुःख हैं। आकाँक्षाएँ तरंगें हैं। धीर मलय-पवन सी ठण्डी साँसें हैं और धरती के कर्मों से परमाणु हैं। पन्त की 'मानव' कविता में भी मानव-प्रकृति की तिल सुषमा से निर्मित कहा गया है।

दृगों में ... प्रात !

शब्दार्थ—निदाध के दिन=गर्मी के दिन, दुःख की जलन। पावस रात=वर्षा की रात, निराशा भरे आँसुओं की झड़ी। सुधा का मधु=अमृत का माधुर्य्य। हाला का राग=शराब की मस्ती। घन=बादल। पवि=वज्र। नवनीत=मक्खन। निमिष=पलक। उर्मि=छोटी लहर। वात=पवन। कुहू=अमावस्या की रात्रि। माधव=वसंत।

भावार्थ—इन नयनों में गर्मी की दुपहरी सी जलन और वर्षा की रात सी दुःख भरी आँसू की झड़ी छिपी रहती है। इनमें अमृत का माधुर्य्य है, शराब सी मस्ती है, दुःख के बादल हैं, और प्यास की पीड़ा है। हृदय में वज्र सी कठोरता और मक्खन सी मृदुलता भी है। पलकों की गति झरने के राग के समान है। आँसू की लहरें हैं, हँसी का पवन है, अमावस्या की रात्रि के अन्धकार सी घनी निराशा है, बसन्त के प्रभात सा उल्लास और सौंदर्य है।

हो गए **अन्तर्धान ?**

शब्दार्थ—वपुमान=मूर्त्तिमान । मान=महिमा । रौरव=इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम । बाड़व=जल में लगने वाली आग । अन्तर्धान=लीन ।

भावार्थ—हृदय में धूल सी क्षुद्रता भी है और आकाश की महिमा भी है; स्वर्गीय दिव्यगुण भी हैं और नारकीय पापवासनाएँ भी हैं, बर्फ की शीतलता का सा सन्तोष भी है और बड़वानल के ताप सी जलन भी है । अनेक आश्चर्यों से भरा हुआ, प्रकृति की अनन्त सुषमा का उत्तराधिकारी यह जीवन मिट्टी में ही उत्पन्न होकर फिर क्यों उसी में मिट जाता है ?

काल के विकास ।

शब्दार्थ—अभिनव=नवीन । मधुआसव=मीठी शराब । हिम अधरों से=बर्फ से जड़ अधर । नाश—कौन ? कौन इस जीवन के शराब भरे प्याले को नाश के होठों से लगा देता है ? इसकी मृत्यु का कारण कौन है ? ह्रास=अवनति, नाश ।

भावार्थ—समय रूपी नवीन प्याले में जीवन रूपी मीठी शराब भर कर कौन उसे नाश के बर्फ से जड़ ओठों से लगा देता है ? साकी प्याले में शराब भर प्रिय के ओठों से लगा देता है । शराब चुक जाती है, खाली प्याला रह जाता है । यहाँ समय का प्याला है और जीवन की शराब है । जीवन मिटता जाता है किन्तु समय का प्याला अक्षुण्ण है । शराब पीने वाला है नाश । पर यह पिलाने वाला कौन है ? प्रत्येक कण से यही आवाज निकलती है कि अमरता जीवन का नाश है और मृत्यु ही जीवन को पूर्ण विकास देती है । पन्त के समान ही महादेवी के सामने भी विकास के दोनों पहलू—मृत्यु और जन्म का सनातन महत्व है ।

दूर है **में फूट !**

शब्दार्थ—अलक्षित=अदृश्य । इष्ट=साध्य । वारिद=बादल ।

भावार्थ—हमारा उच्च लक्ष्य बहुत दूर है । उस ओर बढ़ने वाला हमारा एक जीवन एक पग के समान है । अतः उस तक पहुँचने के लिए अनेक जीवनों की आवश्यकता है—अनेक बार मरने और जन्म धारण करने की जरूरत है ।

जन्म और मरण का यह जो अदृश्य, रहस्यमय परिवर्तन हो रहा है, यह हमें अपने साध्य की ओर बढ़ाए लिए जा रहा है। जिस प्रकार डोर में बाँधकर कोई वस्तु अपनी ओर खींची जाती है उसी प्रकार जीवन और मरण हमें अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। रात का पिछला पहर सबसे अधिक अंधेरा होता है। किन्तु उसी में तो उषाकाल छिपा होता है। इसी प्रकार मृत्यु का अंधकार जीवन के आलोक को छिपाये हुए है। घनी मेघ घटायें आकाश से गिरकर पानी के रूप में बरसती हुई सफल होती हैं। मेघों की सफलता इसी में है कि वे स्वयं मिटकर दूसरों को दान दें।

स्निग्ध पूर्ति विकास !

शब्दार्थ—स्निग्ध=रस भरा, तेल का। क्षार=भस्म। आलोक-प्रसार=प्रकाश को फैलाना। मृत पिण्ड=मिट्टी के टुकड़े, मिट्टी। प्रयास= प्रयत्न।

भावार्थ--दीपक अपने तेल को जला कर प्रकाश फैलाता है। बीज मिट्टी में अपने आपको मिटाकर असंख्य बीजों को जन्म देता है। संसार का यह शाश्वत नियम है कि लघु नाश में अनन्त निर्माण छिपा रहता है। अणुओं का प्रयत्न कभी भी नष्ट नहीं होता। मनुष्य की असफलता में ही उसकी सिद्धि की पूर्ति और उसके जीवन का विकास छिपा है। ठोकर लगने पर ही मनुष्य की सोई चेतना जाग उठती है। उसका जागरण और उन्नयन ही उन्नति और सफलता का चिन्ह है।

विशेष—काव्य-रूप की महिमा के साथ-साथ इसका काव्य-विषय भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कवियित्री की स्थायी मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति है।

"नष्ट कब—प्रयास।" अणु का वेग कभी विफल नहीं जाता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु परमाणुओं का संघात है। एक परमाणु जन्म लेता है, मर जाता है। उसके मरते ही दूसरा परमाणु जन्म लेता है, वह मर जाता है। इस प्रकार परमाणुओं की एक धारा सी बँध जाती है जो अदृश्य होती है। उसे न देख सकने के कारण ही हम परमाणुओं के संघात को वस्तु

कह देते हैं। परमाणुओं का यह वेग निरर्थक नहीं जाता। आज का विज्ञान भी परमाणुवाद में विश्वास रखता है।

२२

कह दे **आँसू-कण देखूँ !**

शब्दार्थ—यौवन-सुषमा=यौवन का अपार सौन्दर्य। जर्जर=दुर्बल। हिम हीरक=ओस के हीरे।

भावार्थ—हे माँ ! तू ही बता मैं क्या देखूँ ? खिलती हुई कलियाँ देखूँ या प्यास से तड़पते हुए सूखे ओठों को देखूँ ? तेरे यौवन के अव्यय सौन्दर्य का रस लूँ या अभावों से दुर्बल जीवन की ओर देखूँ ? (यहाँ प्रकृति को 'माँ' कहा है।)

हिलते हुए नील-कमलों पर मुस्कराते हुए ओस के हीरे देखूँ या दुःख से बरसते हुए आँसुओं को देखूँ ?

सौरभ **पतझर देखूँ !**

शब्दार्थ—प्राणों का पतझर=जीवन की निराशा।

भावार्थ—सुगन्धि से लदे हुए इस पवन की ओर देखूँ या व्यथा को हृदय में छिपाए हुए व्यक्तियों की आहों की ओर ध्यान दूँ ?

सुगन्धि और पुष्प रस के प्रदान करने वाले तेरे बसन्त की सुषमा में खेलूँ या पीड़ा से दग्ध जीवन के निराशा के पतझर की ओर ध्यान दूँ ?

मकरन्द पगी **करुणा देखूँ !**

शब्दार्थ—मकरन्द-पगी=पुष्प-रस से भरी। केसर=पुष्प के भीतर लगी हुई वह सींक जिस में मकरन्द बनता है। उर-पंजर=हृदय रूपी पिंजरा। जीवन शुक=जीवन रूपी तोता। दुर्दिन=बुरे दिन।

भावार्थ—केसर का रस पी-पी कर जीने वाली तितलियों को खोजूँ, हृदय रूपी पिंजरे में बँधे हुए और अन्न के दाने-दाने के लिए तरसने वाले जीवन रूपी तोते की ओर ध्यान दूँ ?

कलियों की घनी जाली में छिपी हुई लताएँ देखूँ या बुरे दिनों में पिसे हुए व्यक्तियों की लज्जा और दुःख की ओर देखूँ ?

बहलाऊँ दीपक को देखूं !

शब्दार्थ—किसलय=कोंपल । अलिशिशु=भ्रमर के बच्चे पाषाण=पत्थर । तेरे—दीवाली=अनन्त आकाश में तारों की दिवाली देखूँ ।

भावार्थ—कोंपलों के झूले में झूलने वाले भ्रमर बालों को प्रसन्न करूँ, या अभाव के पत्थरों से पिसे हुए फूल से बच्चों की ओर देखूँ ?

तेरे अनन्त आकाश में तारों की दीवाली देखूँ, या किसी दरिद्र की एकांत झोंपड़ी में बुझते हुए दीपक को देखूँ ?

देखूँ क्रन्दन देखूँ !

शब्दार्थ—विरह=पक्षी । निस्पन्द=शान्त । रजत रश्मि=चन्द्र किरण । निर्निमेष=अपलक । अभिनय=नाटक, प्रदर्शन । अम्लान=मोद भरी । अजस्र=निरन्तर बहने वाला । क्रन्दन=रुदन ।

भावार्थ—झरनों की कलकल ध्वनि में मिले हुए पक्षी के कलरव में अपने आपको लीन कर दूँ, या शान्त पड़ी हुई वीणा के तारों के समान अस्त-व्यस्त मानव-जीवन को देखूँ

मीठी नींद सुलाने वाली चाँद की चाँदी सी किरणें देखूँ या अपलक नेत्रों में घिरी चिन्ता की बदलियों को देखूँ ?

तू निरन्तर हर्ष-विभोर रहती है, यह जीवन सदैव आँसू बहाता रहता है, तो बता मैं तेरे ऐश्वर्य को देखूँ या जीवन पीड़ा की ओर देखूँ ?

विशेष—यहाँ कवियित्री की यथार्थ दृष्टि सजग दिखाई देती है । प्रकृति के सौन्दर्य में उलझ कर रह जाना उसे पसन्द नहीं है ।

२३

दिया क्यों गान !

शब्दार्थ—स्मृतियों की कम्पन=स्मृतियों की पीर । उन्मीलन=जागरण । स्वप्न लोक की—मुस्कान=मनोहर स्वप्न आने बन्द हो गए हैं । झंझा का शैशव=तूफान के समान चंचल बचपन । अनुरंजित=रंग बिरंगी ।

भावार्थ—हे देव ! तुमने मुझे जीवन का वरदान क्यों दिया है ? इसमें

बीते दिनों की मधुर स्मृतियों की पीड़ा है। दबी हुई व्यथा बार-बार जाग उठती है। मनोहर स्वप्नों का संचार होना भी बन्द हो गया है।

इसमें तूफान के समान चंचल बचपन है। रंग-बिरंगी कलियों के समान विविध भावों की सम्पत्ति है। जिस प्रकार मलयाचल से आने वाला पवन नदी में लहरें उठा देता है, उसी प्रकार वह जीवन में भी आनन्द और उत्साह को तरङ्गित कर देता है।

इन्द्रधनुष सा **म्लान !**

शब्दार्थ—घन-अंचल=मेघों के बीच। तुहिनबिन्दु=ओस की बूँद। किसलय दल=कोंपलों का समूह। सिकता=रेत। वात-विकम्पित=वायु के झोंकों से हिलती हुई दीपक की लौ के समान। म्लान=दुर्बल, असुन्दर।

भावार्थ—जिस प्रकार बादलों के बीच लटका हुआ इन्द्र धनुष प्रतिक्षण विलीन होता जाता है, जिस प्रकार कोंपलों पर पड़ी ओस की बूँदें क्षण में बिखर जाती हैं, उसी प्रकार यह जीवन भी क्षणभंगुर है। इतना ही नहीं उसे अपनी क्षणभंगुरता पर गर्व भी है।

जिस प्रकार रेत में खिंची लकीर मिट जाती है, पवन के झोंकों में दीपक की लौ बुझ जाती है, गालों पर आई हुई आँसू की बूँद धरती पर गिरकर विलीन हो जाती है, उसी प्रकार समय की चाल में पड़कर मनुष्य भी मिट जाता है। ('काल-कपोलों म्लान'-जिस प्रकार आँसू गालों पर आकर गिर जाता है, उसी प्रकार समय के बीतने पर मनुष्य भी मिट जाता है। जीवन को काल-कपोलों के आँसू से तुलना देकर कवियित्री ने जीवन की क्षणभंगुरता और करुणा दोनों का ही सफल उद्घाटन किया है।)

२४

नव मेघों को **छाया !**

शब्दार्थ—माया=आकर्षण।

भावार्थ—जब चातक का सरल मन अत्यन्त करुण स्वर में मेघों को पुकारता था, तब उसकी दर्द भरी पुकार सुनकर मेरी आँखों में पीड़ा के बादल घिर आते थे। ('करुणा के सावन' से कवियित्री ने दो भावों को प्रकट किया

है। प्रथम, चातक की सहानुभूति में उसकी आँखें भी भर आती थीं। द्वितीय, चातक के वांछित सावन को वह अपनी आँखों में भर लाती थी।) जब मैं यह देखती थी कि सूर्य की किरणें तितली के रंग-बिरंगे पंखों का आकर्षण उड़ाए दे रही हैं, तब मैं तितली पर पलकों की छाया करने को उत्सुक हो उठती थी। (सूर्य के प्रकाश में वस्तुओं का रंग उड़ जाता है किन्तु छाया में वह तनिक भी नहीं बिगड़ता।)

यहाँ कवियित्री के मन में सब प्राणियों के प्रति सहानुभूति की भावना दिखाई देती है।

जब ... जीवन-प्याली !

शब्दार्थ—पाँतें=पंक्तियाँ। मृदु=कोमल।

भावार्थ—रात के पिछले पहर में वायु चलने लगती है और तारों की ज्योति मन्द पड़ने लगती है। (वायु के झोंके रात के निश्वास हैं। गर्मी में वस्तुएँ पिघल कर विलीन हो जाती हैं।) जब रात की उच्छ्वासों की गर्मी में तारे पिघल-पिघल कर विलीन होने लगते हैं तब मेरा मन उन नष्ट होते हुए तारों के आँसू की लड़ियों को गिना करता था। रात में जब ओस गिरा करती थी, तब मैं उसे निरन्तर देखा करती थी क्योंकि मुझे नींद नहीं आती थी।

(व्यक्ति जब लज्जित होता है तो उसका मुख लाल होता है।) प्रातः काल में जो लज्जा आकाश को कलियों से लाल रङ्ग से रङ्ग देती है, वही लज्जा मुझे पुलकित करके मेरे जीवन में उमंगें उत्पन्न कर देती थी। (नारी की लज्जा उसके प्रेम की द्योतक होती है।)

घिरकर ... जाता बन !

शब्दार्थ—अविरल=सघन। द्रुत=तेज। मन-बाल शिखी=मन रूपी नन्हा मोर।

भावार्थ—जब आकाश सघन घटाओं से आच्छादित होकर चारों ओर से झुक आता है, तब न जाने किन व्यथाओं से मेरा हृदय भर जाता है। ('मानस' शब्द पर श्लेष है। इसका अर्थ तालाब भी है। जब बादल घिरकर आते हैं और बरसते हैं, तो तालाब जल से भर जाते हैं।)

जब मेघों के गर्जन रूपी ताल पर बिजली बेसुध होकर नाचने लगती है, तो उसका नृत्य ही मेरे मन रूपी नन्हे मोर की मधुर पुकार बन जाता है। (मेघों का गर्जन और बिजली की तड़पन देखकर मोर गा उठते हैं, और मेरा मन भी मधुर संगीत छेड़ देता था।)

किस भाँति **थे अपने !**

शब्दार्थ—मुकुरमानस=दर्पण के समान स्वच्छ हृदय।

भावार्थ—मैं किस प्रकार वर्णन करूँ कि जब पहले-पहल संसार से मेरा परिचय हुआ था, तो वे दिन कैसे थे ? जिस प्रकार जल का कण छूते ही मिश्री घुल जाती है, उसी प्रकार किसी के आँखों में आँसू देखते ही मेरा मन उसमें घुल-मिल जाता था, अपने आपको भुला बैठता था।

दर्पण के समान स्वच्छ हृदय में तब अहं का भाव नहीं था। तब तो संसार भर के सुख-दुःख उसमें प्रतिबिम्बित होकर अपने ही दिखाई देते थे। (दर्पण स्वयं अपनी छाया नहीं देख सकता वरन् संसार भर उसमें प्रतिबिम्बित होता है। इसलिए 'मुकुरमानस' प्रयोग बहुत सुन्दर बन पड़ा है।)

तब सीमा हीनों **था पीड़ा !**

शब्दार्थ—विनिमय=आदान-प्रदान।

भावार्थ—यद्यपि मेरा व्यक्तित्व ससीम था किन्तु उसका सम्बन्ध सीमाहीन भावनाओं से रहा करता था। अनन्त संसार के असीम सुख-दुःख मुझे अपने ही प्रतीत होते थे। कभी मैं हँस देती थी और कभी रो देती थी। जब संसार सुखी होता था तो मैं भी प्रसन्न हो जाती थी। संसार के दुःख देखकर मेरे भी आँसू आ जाते थे।

जिस प्रकार मार्ग में बच्चे खेला करते हैं, उसी प्रकार सुख और दुःख दोनों ही विकास के पथ पर खेल किया करते थे। (यह क्रीड़ा सम्भवतः आँख मिचौनी का खेल है जिसमें एक छिपता है तो दूसरा ढूँड़ता है और कभी दूसरा छिपता है तो पहला ढूँड़ता है।) अनेक रुपात्मक संसार को देखकर मेरा मन विस्मय से भर उठता था। संसार मुझ से करुणा माँग रहा था।

यह दोनों छूकर जीवन !

शब्दार्थ—वह दोनों=मन और संसार। संसृति=संसार।

भावार्थ—मेरा मन और संसार सृष्टि की चित्रपटी की दो छोरें थीं। यदि संसार न होता तो मेरी पीड़ा भी न होती, और यदि मैं न होती तो संसार के अपार सौन्दर्य को कौन देखता। इसलिए मुझे और संसार को मिला कर ही सृष्टि पूर्ण थी।

बचपन के भोलेपन में मेरी दशा ऐसी थी। किन्तु न जाने किसने मेरे उस भोलेपन को चुरा लिया और उस मदहोशी के सपने से जीवन का स्पर्श करके मुझे जगा दिया। (सोते हुए को जगाने के लिए उसे छूना पड़ता है, हिलाना पड़ता है। जीवन से यहाँ अभिप्राय: है जीवन की सजगता। जीवन की सजगता आते ही बचपन की मदहोशी और रंगीनियाँ दूर हो जाती हैं। होश आने पर अपना व्यक्तित्व मुखर हो उठता है।)

जाती नवजीवन आँसू बनकर !

शब्दार्थ—निस्पन्द=शान्त। स्मित=हँसी।

भावार्थ—जिस प्रकार घटाएँ कण-कण में जल बरसा जाती हैं उसी प्रकार मेरे हृदय की जो करुणा और सहानुभूति सभी को नया उत्साह प्रदान करती थी, आज वह मन के क्षुद्र स्वार्थ बन्धन में पड़कर शान्त हो गई है। बचपन में मैं किसी के दुख: को देखकर कातर हो उठती थी। किन्तु अब मेरी करुणा अपने तक ही सीमित रह गई है।

बचपन में मैं सब के सुख से सुखी और सबके दु:ख से दु:खी हो जाया करती थी। किन्तु अब तो जब मैं स्वयं सुखी होती हूँ तो हँसती हूँ, और जब स्वयं दु:खी होती हूँ तो रोती हूँ। अब किसी के सुख-दु:ख से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

अपनी लघु निर्वासित !

शब्दार्थ—साधों=इच्छाओं। सपनों का स्पन्दन=स्वप्नों का जागरण। उदधि=सागर। सिकत कण=धूल का कण। निर्वासित=निकाल दिया गया।

भावार्थ—अब मेरी साँसों में मेरी इच्छाओं का ही स्फुरण होता है। पहले मुझे जग की इच्छाओं का भी पूरा-पूरा ध्यान रहता था। पहले मैं सारे विश्व के कल्याण के सपने देखा करती थी। किन्तु आज मैं अपने क्षुद्र हृदय में केवल अपने जीवन से सम्बन्धित सपने ही देखा करती हूँ।

पहले सारी सृष्टि की सुषमा मेरी सम्पत्ति थी। किन्तु आज यह अनन्त ऐश्वर्य बेगाना हो गया है। अब तो जीवन का सागर धूल के कण में सीमित होकर रह गया है। लोक हृदय से मिला हुआ जीवन सागर के समान अपार है। निज-हित में रुँधा हुआ जीवन धूल के कण के समान है।

स्मिति ले **निर्झर !**

शब्दार्थ—मोती=ओस के मोती।

भावार्थ—प्रातःकाल होते ही मैं हर्ष से विभोर हो जाती हूँ। सन्ध्या होते ही दीपक जलाती हूँ। सन्ध्याकालीन स्वर्णिम शोभा को बिखेरता हुआ दिवस छिप जाता है। तब रात ओस के मोती लुटाती हुई चाँदनी में मुस्करा उठती है। इस प्रकार समय बीतता जा रहा है और में अपने पथ से विमुख हूँ।

झरने अपनी मर्मर ध्वनि में गति की कलकल मिलाकर स्फूर्ति का संगीत सुनाते हैं और मुझे अपने असीम मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। जब सेनाएँ प्रयाण करती हैं तब संगीत बजा करता है।

यह साँसें **एकाकीपन पर ?**

शब्दार्थ—विरक्त=उदासीन। सौरभ=सुगन्धि। चिर सहचर=पुराने साथी।

भावार्थ—मेरी साँसों को गिनते-गिनते आकाश की पलकें झपकने लगती हैं। (आकाश की पलकों से कवियित्री का संकेत नक्षत्रों की ओर है।) धीरे-धीरे नक्षत्र भी विलीन होने लगते हैं। किन्तु मैं उदास, पथ से विमुख बैठी रहती हूँ। प्रभात काल की सुगन्धित वायु मेरे अंचल में भर जाती है।

बहुत दूर से मेरे चिरसंगी पथिक मेरी राह देख रहे हैं। किन्तु मेरा मान न जाने क्यों अपने सूनेपन पर ही रोया करता है ? वह अपने साथियों के साथ आगे बढ़ने के लिए तनिक भी उत्सुक नहीं होता।

अपनी प्याली में ?

शब्दार्थ—निधियाँ=संपत्ति। सिकता=धूल। हीरक=हीरे की।

भावार्थ—सारे संसार में जो सम्पत्ति बिखरी है वह मेरी है। किंतु मैं अपनी इन विभूतियों को कभी न जान पायी क्योंकि मैं अपने में ही सीमित रही। मेरे स्वार्थ में तो क्षुद्रता भरी है। स्वार्थ ने मेरे जीवन में कभी गरिमा न आने दी।

मैं अपने एकाकीपन पर रो-रोकर ही सफलता प्राप्त करना चाहती हूँ। यह इच्छा ऐसी ही है जैसे मैं जुगनू की चमक में दिन को ढूँढ़ू अथवा हीरे की प्याली में धूल पानी की कामना करूँ। जुगुनू तो रात में होते हैं। उनमें दिन की आभा भला कैसे दिखाई दे। सफलता तो साधना से प्राप्त होती है, सूनेपन में रोने से नहीं। जीवन में मुझे अपने अभावों के रुदन की कामना होती है। किंतु जीवन का एकाकी रुदन हीरे की प्याली में रखी धूल के समान है।

विशेष—प्रथम पाँच छन्दों में कवियित्री ने बचपन का मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा है। बच्चे सबके दुःख से दुःखी और प्रत्येक के सुख से सुखी होते हैं। बाद के छन्दों में यौवन की एकांतिक अभिलाषाओं और अभावों में उलझ कर बचपन की सहृदयता के नष्ट हो जाने का चित्र है।

२५

प्राणों के शीतल मन !

शब्दार्थ—पाहन=अतिथि। अंजन=काजल। विद्युत-मुस्कान=बिजली रूपी मुस्कराहट। वारिद=बादल। रजनी=रात्रि। रश्मियाँ=किरणें। छायातन=छाया सा शीतल शरीर धारण करके।

भावार्थ—हे मेरे जीवन के अन्तिम अतिथि ! तुम वह बादल बन कर आना जो चाँदनी से धुले हुए अंजन के समान है, जो बिजली रूपी मुस्कराहट को बिखेरता हुआ सुगन्धित वायु के पंखों के सहारे उड़कर आकाश में छा जाता है। मृत्यु प्राणों का अन्तिम पाहुन है। जिस प्रकार बादल आकाश को ढक लेता है उसी प्रकार मृत्यु जीवन को ग्रस लेती है।

जिस प्रकार थके हुए पथिक को रात्रि शीतल छाया सा आनन्द प्रदान करती

है, और थकावट से बोझिल जीवन में निद्रा का रस घोल देती है, उसी प्रकार तुम भी इस जीवन को मदहोश कर देना।

न जाने किस लोक से छिपती हुई सी किरणें उतर कर आती हैं और पुष्प रस पीकर अपनी प्यास मिटाने के लिए कलियों को विकसित कर देती हैं। इसी प्रकार तुम भी छाया सी शीतलता लिए हुए छिपकर आना।

मैंने अपने जीवन रूपी प्याली में व्यथाओं का रस और सौंन्दर्य की लालिमा आँखों की पुतली में छानकर भरी है। तुम किरणों के समान ही छिप कर आना और इस छने हुए निर्मल रस को पीकर अपने मन को शीतल कर लेना। मृत्यु जीवन की सब शक्तियों को पी जाती है।

"पुतली में छान"—शर्बत, रस आदि किसी कपड़े में छान लिया जाता है ताकि वह शुद्ध हो जाए। यहाँ उसे पुतली में छान कर भरा गया है।

हिम से गिन गिन !

शब्दार्थ—हिम=बर्फ। निस्पन्द=जड़। सस्पन्द=गतिवान। कर लेना क्रय=खरीद लेना। व्यापार विसर्जन=व्यापार की समाप्ति। दिव=दिवस।

भावार्थ—तुम बर्फ के कारण जड़ और नीले हृदय को लेकर आना। मेरे जीवन रूपी दीपक को अपने हृदय में धर कर जीवन की सजगता प्राप्त करना और मेरे इस शरीर को बर्फ बन जाने देना।

"हिम से जड़ नीला—"यदि कोई व्यक्ति देर तक बर्फ में पड़ा रहे तो उसका शरीर गतिहीन एवं नीला हो जाता है। यदि फिर उसे ताप पहुँचाया जाए तो उसमें जीवन की सजगता आ जाती है।

चिरकाल से मैं विभिन्न विभूतियों को संचित कर रही हूँ। तुम मुझे थोड़े से आँसू देकर इस सारी संपत्ति को खरीद लेना। मैं चाहती हूँ कि अब यह जीवन का व्यापार समाप्त हो जाए।

यह संसार अनन्त लय के समान है जिसका एक-एक क्षण आकर्षक कम्पन के समान है। तुम इस संसार के विराट संगीत में अपने पसीने को धोना और अपने हृदय की नीरसता को रस से भर लेना।

'धोना...कंप' पसीने से लथपथ व्यक्ति नहाकर पसीना धोता है और तब उसकी सारी थकावट दूर हो जाती है।

कितने ही सुखों और दुःखों के समूह अतिथियों के समान आते हैं और फिर चले जाते हैं। वे सुख-दुःख मेरे जीवन में प्रचण्ड आवेग और अशान्ति उत्पन्न कर देते हैं। तुम शान्त क्षण बनकर आना ताकि मेरा जीवन चिरशान्ति में सो जाए।

दिन के समय यह अभिमानी संसार तेरी ही छाया में हँसता है। तू एक ऐसा अतिथि है जिसका इन्तजार सब लोग साँस-साँस में घड़ियाँ गिनकर देख रहे हैं। प्रत्येक श्वासोच्छ्वास में मृत्यु जीवन के समीप आती जाती है।

विशेष—प्रस्तुत गीत में महादेवी मृत्यु का आह्वान करती हैं। यह पलायन-प्रवृत्ति की चरम अवस्था है। मृत्यु को पुकारने के दो कारण हैं, प्रथम तो जीवन में एक क्षण ऐसा आता है जब जीवन की अपेक्षा मृत्यु ही अधिक काम्य बन जाती है। द्वितीय, मृत्यु एक ऐसा सत्य हैं जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

२६

अलि सुनाऊँ ?

शब्दार्थ—विद्युत्=बिजली। चित्रपटी=वस्त्र आदि का वह आधार जिस पर चित्र बनाया जाता है। आँक न पाऊँ=पहचान न पाऊँ। आभा=चमक।

भावार्थ—हे सखि मैं उन्हें कैसे प्राप्त करूँ ? मैं उन्हें अपनी पलकों के बन्धन में बाँधकर पछताती हूँ, इसीलिए ही तो वह आँसुओं का रूप धारण कर बह जाते हैं। आँखों में उन्हें बसा कर मैं दुःखी इसलिए रहती हूँ क्योंकि मैं उन्हें देख नहीं सकती। (आँखों से बाहर की वस्तुएँ तो दिखाई दे जाती हैं किंतु जो उसके भीतर हैं उन्हें वे कैसे देखें ?)

जिस प्रकार बादलों के बीच एक क्षण भर के लिए बिजली चमकती है और फिर छिप जाती है, उसी प्रकार मेरी आँखों की चित्रपटी में उनकी

शोभा बिखर कर तुरन्त ही लुप्त हो जाती है और मैं उसे भली भाँति निरख भी नहीं पाती।

वे प्रकाश बन कर चन्द्रमा की किरणों में विलीन हो जाते हैं। मैं उन्हें चांदनी रातों में सर्वत्र ढूँढ़ा करती हूँ किन्तु उन्हें प्राप्त नहीं कर सकती।

("वे आभा बन—" जब एक प्रकाश में दूसरा प्रकाश मिल जाता है तो दोनों को अलग-अलग पहचानना असम्भव हो जाता है।) मैं उन्हें अपनी दर्द भरी कहानी न सुना पाऊँ इसीलिए ही तो वे सागर की धड़कन बनकर लहरों की थपकियों की छाया में सो जाते हैं। उनकी नींद टूटने के भय से मैं चुपचाप रह जाती हूँ।

'सोते सागर की'—माँ बच्चे को थपकियाँ दे-देकर ही सुलाती है यहाँ लहरें थपकियाँ देती हैं और वे सो जाते हैं।

वे जाऊँ !

शब्दार्थ—तारकबाला = तारिका। अपलक चितवन = ज्योति। मानस = हृदय।

भावार्थ—मैं उनकी छाया भी न छू सकूँ और निरन्तर उनके प्रेम में दीवानी बनी रहूँ इसीलिए वे तारों की अमन्द आभा बन कर छलकने लगते हैं। (तारों की छाया होती ही नहीं है फिर उसे छुआ कैसे जा सकता है।)

वे मेरे हृदय में उच्छ्वासों का रूप धारण करके छिप रहते हैं। उन्हीं के वियोग में तो मैं ठण्डी साँसें भरा करती हूँ। उनको अपनी साँसों के रूप में बिखरता हुआ तो देखती हूँ किन्तु उन्हें रोक नहीं पाती। भला साँसें कैसे रोकी जा सकती हैं।

वे निरन्तर मेरे हृदय में स्मृति के रूप में चुभा करते हैं, ताकि मैं उनकी कठोरता को कभी भी भूल न पाऊँ।

विशेष—प्रस्तुत गीत में अज्ञात प्रियतम और आकुल प्रियतमा की आँख मिचौनी के सरस चित्र हैं।

२७

प्रिय तृषित तीर !

शब्दार्थ—अश्रु=आँसू। पंकिल=कीचड़ भरा। बुद्‌बुद=बुलबुला। फेनिल=झाग भरे। दुर्गमतम=भयङ्कर। युग=दोनों। तृषित तीर=प्यासे किनारे।

भावार्थ—हे प्रिय ! मेरे नयनों के आँसुओं का जल दुःख से उत्पन्न हुआ है, इसमें सुख का कीचड़ मिला है, और इसमें बुलबुले के समान क्षणिक स्वप्नों की झाग भरी है। यह अनेक युगों से इसी प्रकार निरन्तर बहता रहा है। (इस कथन द्वारा कवियित्री अपने अनादि वियोग की ओर संकेत करती हैं।)

आँसुओं का यह जल जीवन के भयङ्कर मार्ग को सजल एवं सरल बनाता, दोनों प्यासे किनारों को तृप्त करता, बह रहा है। यदि आँसू न होते तो जीवन भार हो जाता। आँसू ही तो दुखिया का सहारा है।

'युग तृषित तीर'—का अर्थ अन्वय में स्पष्ट नहीं बैठता। 'युग' का अर्थ दो लेने पर नेत्र ही दो किनारे हो सकते हैं। युग का अर्थ काल मान लेने से भी अर्थ कोई विशेष स्पष्ट नहीं होता।

इसमें उपजा समीर !

शब्दार्थ—नीरज=कमल। सित=सफेद। मीलित=संपुटित। मधुप-भीर=भ्रमरों का समूह। विलसित=सुशोभित।

भावार्थ—इन्हीं आँसुओं में प्रेम का श्वेत कमल उत्पन्न हुआ है। वह कोमल है, उस प्रेम में लज्जा है जो कमल को संपुटित बनाए रखती है ? इसमें पीड़ा की मधुर सुगन्धि मिली हुई है।

इस कमल में कीचड़ की कोई निशानी नहीं। प्रेम में कोई भी दोष नहीं है; कमल में जल का एक कण भी नहीं ठहरता। इसे भँवरों की टोलियाँ जगाती नहीं है।

इस छन्द में प्रेम के कमल की विशेषता प्रकट की है। कमलों पर भँवरों के समूह गुंजार करते हैं। किन्तु प्रेम के कमल को लंपट पुरुषों का कोई मोह

नहीं। केवल एक प्रियतम ने ही इसे विकास दिया है। आगे के छन्द में यही बात कही गई है।

यह कमल तो तेरी करुणा की एक बूंद से अलकृत है। तेरी साँस रूपी वायु का स्पर्श पाकर तेरी दृष्टि की छाया में ही यह विकसित हुआ है।

२८

धीरे-धीरे **विहँसती आ वसन्त-रजनी !**

शब्दार्थ—क्षितिज=आकाश। तारकमय=तेरी वेणी में तारों के मोती गुँथे हुए हैं। रश्मिवलय=किरण रूपी चूड़ियाँ। सित घन अवगुण्ठन=सफेद बादलों का पर्दा। मुक्ताहल=मोती। अभिराम=सुन्दर। पद्म=कमल। अलस-तरंगिणि=मन्द-मन्द बढ़ती हुई नदी। तरल रजत=पिघली हुई चाँदी, चाँदनी। मृदु=कोमल, मधुर। स्मित=हँसी।

भावार्थ—हे वसन्त की रात्रि ! तुम आकाश से धीरे-धीरे उतरती हुई आओ। तुम्हारी वेणी में तारों के मोती जड़े हैं, चन्द्रमा का अनुपम शीशफूल तुम्हें सुशोभित कर रहा है, तुमने किरणों की चूड़ियाँ पहन रखी हैं, शुभ्र मेघों का वस्त्र धारण किया है। तुम अपने नयनों से ओस के सुन्दर मोती बिखेर दो। तुम सबको पुलकित करती हुई आओ।

पत्तों की मर्मर ध्वनि ही तुम्हारे नूपुरों की मीठी ध्वनि है, तुम ने भँवरों से गुंजित कमलों की किंकिणि धारण कर रखी है, मन्द-मन्द बहती हुई नदी की मन्द चाल अपने पाँवों में भर कर हे प्रिये ! तुम अपनी मधुर मुस्कान से पिघली हुई चाँदी के समान चाँदनी को बिखेर दो ! हे वसन्त रजनी ! तुम खिल-खिलाती हुई आओ !!

पुलकित **सिहरती आ बसन्त-रजनी !**

शब्दार्थ—पुलकित स्वप्न=पुलकित कर देने वाले स्वप्न (विशेषण विपर्यय)। कर में···अँजलि=हाथ में स्मृतियों को भरे हुए। दूकूल=दुपट्टा। अभिसार बनी=मिलन के लिए सुसज्जित। सरित-उर=नदी की छाती। सुधा=अमृत, मकरन्द। अवनी=धरती।

भावार्थ—पुलकित कर देने वाले स्वप्न ही रोमावलि हैं, हाथों में मधुर स्मृतियों को भरे हुए, मलय पवन के चंचल दुकूल (दुपट्टे) को धारण किए हुए हे सखि ! तुम नीली छाया के समान फैलती हुई विश्व से अभिसार के लिए सुसज्जित हो लजाती हुई आओ।

प्रस्तुत छन्द में कवियित्री ने वसन्त रजनी को अभिसारिका नायिका का रूप देने का प्रयत्न किया है।

"कर में हो"……रात्रि के समय अतीत मिलन की मधुमय स्मृतियाँ कूक उठती हैं।

अब प्रभात वेला का चित्रण है, जब पवन बहने लगता है, फूल खिलने लगते हैं।

नदी के हृदय में लहरों की सिहरन होने लगी है। मकरन्द भरे पुष्प खिले जा रहे हैं। प्रत्येक क्षण आनन्द विभोर है। यह धरती प्रिय के आने की आहट सुनकर पुलकित हो उठी है। हे वसन्त रजनी ! तुम सिहरती हुई आओ !

'मचल मचल आते पल फिर फिर' का अर्थ स्पष्ट नहीं है। 'अवनी के प्रिय' से वसन्त की ओर संकेत है।

विशेष—प्रस्तुत गीत छायावादी शैली का उत्कृष्ट नमूना है। चित्र रमणीक है।

२९

पुलक पुलक **दृग इन्दीवर !**

शब्दार्थ—प्रवाल=कोंपल। रजत=चाँदी, सफेद। मधुर-पवन=वसंत ऋतु का पवन। मधु कण=ओस की बूँदें। पिक=कोयल। अलिनी=भ्रमरी। पाटल=गुलाब। तम=अन्धकार। पराग की रोली=सुगन्धि का केसर। अंक=गोद। आँज रही=अँजन लगा रही है। इन्दीवर=नील-कमल।

भावार्थ—आज हृदय पुलकित क्यों हो रहा है, आज शरीर सिहर क्यों रहा है और आज क्यों आँखों में आँसू भर-भर आते हैं ?

शेफाली लज्जित होती सी, संकोच करती सी खिल रही है। मौलश्री की प्रत्येक डाली अलसाई हुई है। कुंजों में कोंपलें काले और सफेद तारों की जाली बुन रही हैं। (कुंजों में चन्द्रमा की किरणें हैं। वे सफेद तार हैं। वहाँ जो अन्धकार बिखरा है वह काले तार हैं। धरती पर प्रकाश और छाया की जाली सी बुनी दिखाई देती है।)

वसन्त का पवन भी मन्द-मन्द बह रहा है। हर सिंगार के फूल ओस की बूँदों को बिखेरते हुए झर रहे हैं।

कोयल की बंसी सी रसीली आवाज गूँज उठी है। सरल भ्रमरी गुन्जार करती हुई नाचने लगी है। स्निग्ध और लाल गुलाब अन्धकार पर सुगन्धि का केसर बिखेर रहा है।

रात्रि अपनी कोमल गोद में तालाब रूपी दर्पण को धरे हुए नील कमल रूपी आँखों में काज़ल लगा रही है। (रात्रि के समय नायिकाएँ शृङ्गार करती हैं।)

आँसू **धर धर !**

शब्दार्थ—तारक=तारे। वानीर=बेंत। विहाग=एक राग-विशेष। उन्मन=उदास। निर्मित=बना हुआ। विद्युत=बिजली। पाहुन=मेहमान, प्रेमी।

भावार्थ—तारे आँसुओं का रूप धारण करके निकल रहे हैं। फूलों ने अपने हृदय में भ्रमरों के लिए सेज बिछा रखी है। वायु के चलने से बेंत के वन चंचल हो उठते हैं। उनमें से विहाग का दर्दीला राग फूट निकलता है। (यहाँ प्रकृति में कवियित्री अपनी करुणा का आरोप करती है।)

उदास निद्रा घूम-घूम कर, स्वप्नों की राशि लेकर लौट रही है। देर तक नींद नहीं आई फिर चेतना सपनों के संसार में खो गई।

जीवन ओस की बूँद से बना हुआ अत्यन्त क्षणभंगुर है। प्रेम इन्द्र-धनुष के समान आकर्षक किन्तु शीघ्र ही मिट जाने वाला है। संसार काली घटाओं सा धुधँला है। वह मेघ के समान ही सदैव नवीन, करुणा से भरा और पुलकित सा दिखाई देता है।

हे मेरे प्रियतम ! तुम बिजली बन कर मेरी आँखों में पाँव धरते हुए आओ ।

विशेष—प्रस्तुत गीत में रसीली प्रकृति से घिरी वियोगिनी की दर्दीली पुकार मुखरित है ।

३०

तुम्हें जर्जर जीवन अपने में ?

शब्दार्थ—पावस=वर्षा । नीरव=चुपचाप । विषाद=दुःख । संसृति=संसार । क्रन्दन=रुदन, पीड़ा । जर्जर=दुर्बल ।

भावार्थ—वियोगिनी प्रियतम से मन ही मन कह रही है ।

यदि मैं स्वप्न में ही तुम्हारे दर्शन कर पाती तो अपने हृदय में अनादि काल से पलती हुई प्यास को स्वप्न के उस अल्प काल में ही मिटा लेती ।

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में घटाएँ उमड़ती हैं और फिर तुरन्त ही बरस कर विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार मैं भी अपनी उभरती उमंगों को पूरा कर लेने के पश्चात् अपने आप को तुम पर बलिदान कर देती । जिस प्रकार शरद् ऋतु की रात्रि में सर्वत्र शान्ति होती है, उसी प्रकार मेरे हृदय की हलचल भी मौन हो जाती है । मैं अपने बरसते हुए आँसुओं से सारे संसार का दुःख मिटा देती ।

(राजे और नवाब संगीत की लहरों में सोते हैं और संगीत की लहरों में सुरीला गीत बन कर सारे संसार को सुख की नींद में सुला देती । सुगन्धि बन कर सारे विश्व के वातावरण को सुगन्धित बना देती । और हँसते-हँसते सारे संसार की पीड़ाओं को अपने दुर्बल जीवन में भर लेती ।

(इन पंक्तियों में कवियित्री की लोक-कल्याण की भावना मुखरित है ।)

सबकी सीमा लघुतम बन्धन अपने में ।

शब्दार्थ—आलोक=प्रकाश । तारक=पुतली । मधु=वसन्त । अजर=अक्षय, कभी न मिटने वाला । । स्पन्दन = कम्पन ।

भावार्थ—जिस प्रकार सागर धरती की सीमा है, उसी प्रकार मैं भी अखिल विश्व को अपने भीतर समेट लेती । मैं प्रकाश की विशाल तरंग बन

कर तारों भरे आकाश को अपनी लोल पुतली में छिपा लेती। (सूर्य का आलोक बिखरने पर तारे विलीन हो जाते हैं।)

शाप भी मुझे वरदान सा सुखकर हो जाता, और पतझर की खिन्नता भी मेरे लिए वसन्त का अक्षय आह्लाद बन जाती। दुःख और पीड़ाओं में मुझे आनन्द की अनुभूति होने लगती। मैं अपने प्राणों की एक हलचल में अनेक स्वर्गों का निर्माण करती। मेरे प्रत्येक कर्म में स्वर्ग सा सुख बिखेर देने की शक्ति आ जाती।

मेरी साँसें ही मेरे प्रेम की अमर कहानी गाया करतीं। एक-एक क्षण मेरे बलिदान का चिन्ह बन जाता। और हे प्रिय ! मैं अपने छोटे से प्रेम बन्धन में सैकड़ों मुक्तियों का सुख प्राप्त कर लेती

"मैं लेती बाँध मुक्ति"—महादेवी को वेदान्त की मुक्ति प्रिय नहीं है जिसमें अपने व्यक्तित्व का नाश हो जाय। उन्हें तो जीवन के बन्धन में ही मुक्ति से अधिक सुख प्राप्त होता है।

३१

कौन तुम ... बँध गया अपनी विजय में ?

शब्दार्थ—अलक्षित=अदृश्य। चितेरा=चित्रकार। निलय=निवास।

भावार्थ—हे मेरे हृदय में वास करने वाले ! तुम कौन हो ? कौन मेरी पीड़ा को भी चुपचाप माधुर्य प्रदान कर जाता है ? कौन इन दर्शन के प्यासे नयनों में आँसू बनकर बरस पड़ता है ? नींद के नीरव निवास में रमणीय स्वप्नों को चित्रित करने वाले और मेरे हृदय में रहने वाले तुम कौन हो ?

मेरी साँसें किसके पीछे निरन्तर बढ़ी जा रही हैं ? किसके पाँव के निशान चूमने के लिये मेरी साँसें बार-बार मचल रही हैं ? वह कौन है जो मुझे जीत कर भी अपनी विजय में बँध गया है। मेरे हृदय में रहने वाले तुम कौन हो ?

'कौन बन्दी—' जो विजयी होता है, वही पराजित को बन्दी बनाता है। किन्तु प्रेम में प्रेमी विजय पाकर भी प्रेमिका के प्यारे लोचनों में बँध जाता है।

एक करुण अभाव ... उदय में ?

शब्दार्थ—करुण अभाव=ऐसी कमी जो दुःखी करे। चिर-तृप्ति=अमर-सन्तोष। निर्वाण=मुक्ति। क्रय=सौदा। मधुदिन=बसन्त के दिन।

भावार्थ—एक दर्द भरे अभाव में ही अमर सन्तोष का संसार छिपा हुआ है। बिना अभाव के तृप्ति असम्भव है, एक पल मुक्ति के सैकड़ों वरदान दे रहा है। मुक्ति प्राप्त करने के लिए दीर्घ साधना करनी पड़ती है। किन्तु इस प्रेम का ऐसा प्रभाव है कि एक पल में सैंकड़ों मुक्तियाँ चरण चूमती हैं। मैंने पीड़ा के इस सौदे में किसको प्राप्त कर लिया है ? मेरे हृदय में वास करने वाले तुम कौन हो ?

दूर का संगीत बहुत मधुर लगता है। इस पीड़ा को पा लेने के पश्चात् अब पता नहीं हृदय में दूर के संगीत के समान किस का माधुर्य छलका पड़ता है। आज अपने व्यक्तित्व को खोकर मुझे अपना खोया हुआ साथी मिला है। यह क्या उल्टी घटना घटित हुई है। (व्यक्तित्व के खो जाने पर तो सब कुछ खो जाता है। किन्तु यहाँ अपनत्व के खो जाने पर खोई हुई वस्तु प्राप्त हो गई है। यही उलटी बात हुई है।) क्या विरह की रात मिलन के बसन्त-दिवस के प्रभात में स्नान कर आई है ? (वियोगिनी को अब इस विरह की रात्रि में भी मिलन का आनन्द प्राप्त हो रहा है।)

तिमिर पारावार   **अभिसार लय में ?**

शब्दार्थ—तिमिर पारावार=अन्धकार का सागर। आलोक प्रतिमा=प्रकाश की मूर्ति। अकंपित=स्थिर। घनसार=कपूर। नत=झुकी हुई। अभिसार=मिलन। लय=नाश।

भावार्थ—अन्धकार के सागर में प्रकाश की मूर्ति अडिग बनी हुई है। (सागर में 'प्रकाश-स्तम्भ' बने रहते हैं। इसी प्रकार निराशा और वियोग के अन्धेरे में भी आशा का प्रकाश है।) आज विरह की लपटों से क्यों सुगन्धित कपूर झर रहा है ? विरह में क्यों शीतलता की अनुभूति होती है ? आज मैं क्यों जीवन और नाश में एक ही संगीत सुन रही हूँ ? क्यों दोनों में कोई भेद दिखाई नहीं दे रहा है ?

मेरे जीवन को चुपचाप सुख और दुःख नए रूप में क्यों सजा रहे हैं। अभिमानी स्वर्ग क्यों झुकी हुई धरती से मिल रहा है। क्या आज सारा विश्व हर्ष-विभोर होकर नाश की गोद में सोने जा रहा है ?

(आरम्भ में कवियित्री के मन में वियोग की टीस होती है। फिर मिलन की

मधुरिमा बरसती दिखाई देती है। किन्तु मिलन तो व्यक्तित्व का नाश है। इसीलिए अन्तिम छन्द में कवियित्री को सारी सृष्टि मिलन में लीन होती दिखाई देती है।)

३२

विरह का **करुण बरसात !**

शब्दार्थ—जलजात=कमल । आवास=निवास । मृदुगात=कोमल शरीर। मधुमास=वसंत का महीना। हाट=बाजार।

भावार्थ—जीवन वियोग का कमल है। इसका जन्म दुःख में हुआ है और इसका निवास करुणा में है। (विरह का कारण है प्रेम की असफलता और विरह की अवस्था को प्राप्त करने पर कवियित्री के मन में सारे संसार के लिए करुणा उमड़ उठी है। इसीलिए विरह के कमल का निवास करुणा में ही माना गया है।) दिन इसके आँसुओं को सुखाता है। रात इसे फिर आँसुओं से भर जाती है। (रात में जो ओस की बूँदें पड़ती हैं, वे दिन में सूख जाती हैं।)

हृदय में आँसुओं का खजाना है। नयन भी आँसू की टकसाल है। यह विरह का कमल जल की बूँदों से बने हल्के बादल के समान ही पल भर में विलीन हो जाने वाला है।

वसन्त आँसू सी ओस की बूँदें बरसाता हुआ आया है। वर्षा भी आँसुओं की राशि दे जाती है।

काल **स्मित का प्रात !**

शब्दार्थ—पल-आँसुओं का—पल रूपी आँसुओं का—इस कमल का—एक-एक पल आँसू का बना है। निश्वास=ठण्डी साँस। बात=पवन। स्मित=मुस्कान।

भावार्थ—समय इस विरह के कमल को हल रूपी आँसुओं का हार दे गया है। पवन भी इससे ठण्डी साँसें लेता हुआ बातें करता है। पवन भी इसकी पीड़ा को देखकर दुःखी है।

यदि इस जीवन के कमल को तुम अपने आमोद के लिए ग्रहण करो तो तुम्हारी मुस्कराहट रूपी अनुपम प्रभात को देखकर यह खिल उठेगा। (कमल

प्रातःकाल सूर्य के उदित होने पर खिलता है। जीवन का कमल प्रिय की मुस्कराहट की छाया में मिलता है।)

३३

बीन भी सुहागिनी भी हूँ !

शब्दार्थ—अचल=जड़। निस्पन्द=शांत। स्पन्दन=कम्पन, हलचल। प्रवाहिनी=नदी। जलद=बादल। तृषित=प्यासा। शलभ=पतिङ्गा। चल=चंचल।

भावार्थ—मैं तुम्हारी वीणा भी हूँ और वीणा से उत्पन्न होने वाली झंकार भी हूँ। (वीणा निष्क्रिय प्रकृति की प्रतीक है। गीत सृजन की हलचल का प्रतीक है। आगे की पंक्तियों में यही बात कही गई है। विश्व के सृजन से पूर्व प्रकृति शान्ति होती है।) कवियित्री कहती है कि प्रकृति की वह शान्ति मेरी निद्रा थी। और सृजन की हलचल मेरा जागरण है। प्रलय में भी मैं विद्यमान रहती हूँ और सृजन में भी मेरा व्यक्तित्व अमिट रहता है। (यहां महादेवी अपनी विराट शक्ति एवं अमरता का प्रकाशन करती है।) मैं ऐसा शाप हूँ जो प्रेम के बन्धन में फँसकर वरदान बन गया हो। (महादेवी ने स्थान-स्थान पर अपने जीवन को शाप कहा है क्योंकि जीवन का अर्थ है वियोग। किन्तु प्रेम के बन्धन ने उस जीवन में संसार भर के लिए करुणा की विभूति भरकर उसे वरदान बना दिया है।) मैं नदी का किनारा भी हूँ और किनारों से उन्मुक्त होकर बहने वाली नदी भी हूँ। (कूल बन्धन का प्रतीक है। कूल हीनता उच्छृङ्खलता की प्रतीक है। कवियित्री के जीवन में बन्धन भी है और स्वतन्त्रता भी।)

इस छन्द की दो विशेषताएँ हैं। प्रथम, इसमें व्यक्ति की विराट शक्ति की व्यंजना है। द्वितीय, विरोधी गुणों के समावेश द्वारा व्यक्तित्व की अलौकिकता प्रदर्शित है। आगे के छन्दों में दूसरी विशेषता स्पष्ट रूप से मुखरित हुई है।

मैं वह प्यासा चातक हूँ जिसकी आंखों में बादल रहते हैं। निरन्तर आँसू बहते रहते हैं। किन्तु नेत्र भी प्यासे हैं। मैं उस निष्ठुर दीपक के समान हूं जिसमें अनेक पतिंगे जला करते हैं। मैं उस बुलबुल के समान हूँ जिसने अपने

हृदय में फूल छिपा रखा है किन्तु फिर भी वह व्याकुल है। (बुलबुल और फूल के अनन्य प्रेम की महिमा से उर्दू की शायरी भरी पड़ी है।) मैं काया की छाया के समान हूं जो काया से एक होकर भी सदैव उससे दूर रहती है। (इन पंक्तियों में विरोध चमत्कार यह है कि प्रियतम प्रिया के पास रह कर भी उस से दूर है। उसी प्रकार कवियित्री प्रियतम से कहती है कि मैं तुम से दूर हूँ किन्तु फिर भी सुहागिनी हूँ। इससे प्रेम की अलौकिकता प्रकट होती है।)

आग हूं चांदनी भी हूँ !

शब्दार्थ—हिम जल=ओस, करुणा। प्रस्तर=पत्थर। आधार=आश्रय, प्रियतम। दामिनी=बिजली। चरम आसक्ति=घोर मोह। स्मित की चाँदनी= हँसी की चाँदनी।

भावार्थ—मैं वह आग हूँ जो ओस की शीतल बूंदें बरसाती हैं। वियोगाग्नि में जलने पर भी संसार को करुणा का दान देती हूँ। मैं उस शून्य अवाङ् मानसगोचर ब्रह्म के समान हूं जो काल की सीमा में अभिव्यक्त हो रहा है। मैं कठोर पत्थर की पुलक के समान हूँ। (वैसे पत्थर क्या पुलकित होगा। किन्तु विरोध चमत्कार द्वारा अपनी विशिष्टता का प्रतिपादन है।) मेरे प्रियतम के हृदय में जो मेरा प्रतिबिम्ब है, मैं भी वही हूँ। मैं नीला बादल भी हूँ और स्वर्णिम बिजली भी हूँ।

नाश भी मैं ही हूँ और विकाश की धारा भी मैं ही हूँ। मुझ में त्याग की शक्ति है। घोर मोह का अन्धकार भी मैं ही हूँ। तार भी मैं ही हूँ, उसे झंकृत करने वाला आघात भी मैं ही हूँ और उससे जो झंकार निकलती है वह भी मैं ही हूँ। मैं प्याला भी हूँ, शराब भी हूँ, भँवरा भी हूँ और विस्मृति भी हूँ। मैं ओठ भी हूँ और ओठों पर मंडराने वाली हँसी की चाँदनी भी हूँ। इस छंद में भी कवियित्री व्यक्ति की विराट् शक्तियों को स्वर देती है।

३४

रूपसि चितवन विलास ?

शब्दार्थ—रूपसि=सुन्दरी। घन-केश-पास=मेघ रूपी बालों की राशि। नभगङ्गा=आकाश गङ्गा। रजत धारा=सफेद धारा। सद्यस्नात=अभी हाल

की नहाई हुई। अलकों=बालों। लास=गति, नृत्य। सौरभभीना=सुगन्धित। दुकूल=दुपट्टा । देता बार=जला देता । चितवन-विलास=कटाक्ष-पात, बिजली ।

भावार्थ—प्रस्तुत कविता में वर्षा-ऋतु का मानवीकरण है ।

हे सुन्दरी ! तेरे नीले, कोमल, सुगन्धित मेघ रूपी काले बाल लहरा रहे हैं। ये बिल्कुल स्वच्छ हैं। क्या तू इन्हें रात को आकाश गङ्गा की सफेद धारा में धो आई थी ? ऐसा प्रतीत होता है कि तूने अभी स्नान किया है। तेरे भीगे हुए अंग काँप रहे हैं और शरीर में सिहरन है। तेरे भीगे हुए बालों से नाचती हुई बूँदें गिर रही हैं। (मेघों से वर्षा हो रही है।)

तूने सुरमई रङ्ग का सुगन्धित पतला, गीला और कोमल दुपट्टा ओढ़ रखा है। तेरे चञ्चल अञ्चल से जुगुनुओं के सुनहले फूल झड़ रहे हैं। (स्त्रियों के दुपट्टों में सोने-चाँदी के फूल लगे होते हैं। तेरा निर्मल कटाक्ष दीपक से जला देता है। (जब बिजली चमकती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कई दीपक एक साथ जल उठे हों।)

उच्छ्वासित ... उदास !

शब्दार्थ—उच्छ्वासित=उभरे हुए। वक्ष=छाती। अरविन्द=कमल । मलयज बयार=मलय पवन। केकी-रव=मोर की कूक। स्निग्ध=सजल। लटों से=केशों से । अङ्क=गोद । सस्मित=मुस्कराते हुए । मृदुल= कोमल ।

भावार्थ— तेरे उभरे हुए वक्षस्थल पर बगुलों की पंक्तियों का कमलों का हार है। तेरी साँसें ही धरती को छूकर मलय पवन बन जाती हैं। मोर की कूक रूपी तेरे नूपुरों की ध्वनि को सुनकर संसार के हृदय में वासना की प्यास जाग उठती है। (स्त्री के नूपुरों की ध्वनि को सुनकर पुरुष के हृदय में इच्छाएँ जाग उठती हैं।)

आगे के छन्द में सागर को पावस के बालक के रूप में चित्रित किया है।

हे पावस ! तेरा संसार रूपी बालक उदास है। तू उसे प्रसन्न कर दे। उसे अपनी पुलकित गोद में बिठाकर अपने सजल केशों से उसके शरीर पर छाया कर दे ! (मेघ धरती पर छाया कर देते हैं। और फिर झुककर मुस्कराते हुए

उसके कोमल माथे को चूम लेते हैं। (घटाएँ झुककर बरस पड़ती हैं। धरती शीतल हो जाती है।

३५

तुम ... प्रलय क्या !

शब्दार्थ—तारक=पुतली । नीरव=शान्त । संसृति=संसार । सहास=हँसी भरा, मोद भरा । अरुणोदय=प्रातःकाल । विषादमय= दुःखमय ।

भावार्थ—हे प्रिय ! तुम मुझी में बसते हो, फिर और परिचय की क्या आवश्यकता है ? मेरी पुतलियों में तुम्हारी शोभा है । मेरे प्राणों में तुम्हारी याद है । पलकों में तुम्हारी मूक चाल है । हृदय में मैंने मिलन के पुलकों का चंचल संसार भर लिया है । इसके अतिरिक्त इस संसार में कौन सी संचित करने योग वस्तु है ?

मोद भरा प्रातःकाल ही तेरा मुख है । दुःख भरी रात्रि ही तेरी परछाईं है । मैं दिन को जागकर खेलते बिता देती हूँ और रात में थककर सो जाती हूँ और सपने देखा करती हूँ । मुझे इसी प्रकार जाग और सोकर समय काट देने दो । मैं सृजन और प्रलय के रहस्य को क्या समझूँगी ?

तेरा अधर ... लय क्या ?

शब्दार्थ—अधरबिचुम्बित=ओठों से चूमा हुआ । स्मिति मिश्रित हाला= हँसी से भरी हुई शराब, हँसते हुए दी गई शराब । मानस=हृदय । मधु-शाला=शराब की दुकान । साकी=शराबपिलाने वाला । नन्दन=इन्द्र का वन । निष्क्रिय लय=जड़ प्रलय ।

भावार्थ—तूने यह प्याला ओठों से चूम कर दिया है । हँसते हुए उसमें शराब भरी है । तेरा हृदय ही मेरी मधुशाला है । फिर मेरे प्रिय साकी ! मैं यह क्यों पूछूँ कि मुझे विष दे रहे हो या अमृत ? तुमने प्रसन्नता से मुझे दिया है और मैं उसे पी लेती हूँ ।

मेरे प्रत्येक रोम में नन्दनवन विराजमान है । मेरी प्रत्येक साँस में सैकड़ों जीवन हैं, मेरे प्रत्येक स्वप्न में एक अनोखा संसार नित्य ही बनता-मिटता

रहता है। हे प्रिय ! मुझे स्वर्ग के प्रति आकर्षण से क्या मतलब और जड़ प्रलय के विकर्षण से क्या सरोकार ?

हारूँ   अभिनय क्या ?

शब्दार्थ—निर्वासन=आश्रय। रेखाक्रम=रेखाओं की राशि।

भावार्थ—यदि मैं हार जाऊँ, अपनी पृथक् सत्ता स्थिर न रख सकूँ तो मेरा व्यक्तित्व तुम में विलीन हो जाएगा और मैं सदैव के लिए तुम्हीं में समा जाऊँगी। यदि में जीत जाऊँ और अपने व्यक्तित्व को तुमसे अलग रखूं तो मैं तुम्हारा वन्धन बन जाऊँगी क्योंकि मेरे हृदय में तुम वास करते हो। तुम्हें बाँधकर मैं ऐसा ही असम्भव कार्य करूँगी जैसे सीपी में सागर भर दूँ। हे प्रिय ! अब मेरी हार और विजय का क्या महत्व रहा है।

अब महादेवी अपने और प्रियतम के अभेद की बात कहती है।

यदि तुम चित्र हो तो मैं उस चित्र का निर्माण करने वाली रेखाओं की लड़ी हूँ। यदि तुम मीठे राग हो तो मैं उसको बनाने वाले स्वरों का मिलन हूँ। तुम असीम हो तो मैं सीमा हूँ। बिना सीमा के ज्ञान के असीम की कल्पना नहीं की जाती। हे रहस्यमय ! तुम काया हो और मैं तुम्हारी छाया हूँ। फिर भला शरीर और छाया में प्रियतम और प्रियतमा के अभिनय का क्या महत्व ? उन दोनों में तो वैसे ही अभेद है।

३६

मधुर   सिहर सिहर मेरे दीपक जल।

शब्दार्थ—आलोकित=प्रकाशित। सौरभ=सुगन्धि। विपुल=अधिक। सिन्धु=सागर। अपरिमित=असीम। विश्वशलभ=संसार रूपी पतिंगा।

भावार्थ—हे मेरे जीवन के दीपक तू धीरे-धीरे निरन्तर जलता रहा। प्रत्येक दिन में, प्रत्येक क्षण और पल में जलकर मेरे प्रियतम के मार्ग में प्रकाश विखेर दे।

धूप बनकर घनी सुगन्धि फैला दे। हे कोमल शरीर वाले ! तू कोमल मोम के समान गल ताकि तेरे जीवन का प्रत्येक अणु गलकर प्रकाश का असीम सागर विकीर्ण कर दे। हे मेरे जीवन के दीपक ! तू पुलकित हो-हो कर जल !

सभी शीतल, कोमल और नवीन वस्तुएँ तुझ से आग के कण माँग रहीं हैं। संसार रूपी पतिंगा भी दुःखी होकर यह कहता है कि शोक ! मैं तुझ में न जल पाया। हे मेरे दीपक ! तू सिहरता हुआ जल।

जलते ... सहज सहज मेरे दीपक जल।

शब्दार्थ—असंख्यक=असंख्य। स्नेह हीन=तेल हीन। विद्युत=बिजली। विहँस=हँसकर। द्रुम=वृक्ष। हृदयंगम=हृदय के भीतर धारण करते हैं। वसुधा=धरती। द्रुततर=तीव्र। सुभग=सुन्दर। मृदु=कोमल। सहज-सहज=धीरे-धीरे।

भावार्थ—कवियित्री दीप से कहती है कि मैं तुझे ही जलने के लिए नहीं कहती हूँ वरन् सारी प्रकृति, ज्वाला को धारण किए हुए है—

देख तो सही ! आकाश में अगणित तेल रहित तारों के दीपक जल रहे हैं। जल से भरे हुए सागर का हृदय भी जलता है। (सागर के बीच बड़वानल होती है।) पानी से भरा बादल भी बिजली की ज्वाला लिए रहता है। इसलिए हे मेरे दीपक ! तू भी हँसता हुआ जल !

वृक्ष के हरे और कोमल अङ्गों के बीच भी अग्नि विद्यमान होती है। बाँसों की रगड़ से आग उत्पन्न होती है जो सारे वन में फैल जाती है। (वन की आग को दावानल कहते हैं।) इस जड़ धरती के भीतर भी आग बँधी है। हे मेरे दीपक ! तू भी प्रकाश को बिखेरता हुआ जल। हे सुन्दर दीपक ! तू मेरी तेज आहों से बुझने का भय मत कर। मैंने अपनी कोमल पलकों के अंचल में तुझे छिपा रखा है। (जब दीपक को अँचल की ओट में कर लिया जाता है तो उसके बुझने का भय नहीं रहता।) हे मेरे दीपक ! तू धीरे-धीरे जल।

सीमा ... आलोकित कर !

शब्दार्थ=लघुता=क्षुद्रता। अक्षय=खाली न होने वाले। कोष=खजाने। चिर=अमर। क्षय=नष्ट। स्मित=हँसी। मदिर=धीरे-धीरे।

भावार्थ—तू बुझने की अवधि का ध्यान कर। तेरा जीवन अनन्त है। जीवन का अन्त होना तो क्षुद्रता की निशानी है। तू सदैव से जलता चला आ रहा है। तू अपने जीवन के अन्त की राह मत देख। मैं

कभी न खाली होने वाले नयनों के खज़ाने से तुझ में आँसू की बूँदें भरती रहती हूँ । हे मेरे सजल दीपक ! तू निरन्तर जलता रह ।

यह अपार अन्धकार और तेरा अमर प्रकाश निरन्तर नए-नए खेल-खेलते रहेंगे । अन्धकार तुझे डुबाने का प्रयत्न करेगा और तू अन्धकार को जीतने का प्रयत्न करेगा । किन्तु तू निरन्तर अन्धकार को विजय करता चल । अन्धकार के कण-कण में बिजली सा चमकदार चित्र बनाता हुआ चल । हे मेरे दीपक ! तू शान्ति पूर्वक जल ।

तू जितना ही जल-जलकर मिटता जाता है, वह कपटी प्रियतम उतना ही मेरे समीप आता है । और जब मेरा और प्रियतम का सुखद मिलन हो तो तू प्रियतम की निर्मल हँसी में मिलकर प्रसन्नता पूर्वक बुझ जाना ।

हे मेरे दीपक ! धीरे-धीरे जल और प्रियतम के मार्ग पर प्रकाश बिखेर दे । (महादेवी का साधनामय जीवन ही धीरे-धीरे जलता हुआ एक दीप है ।)

३७

[प्रस्तुत गीत का इस संग्रह में विशिष्ट महत्व है । यहाँ महादेवी ने करुणा के व्यक्तिगत साम्राज्य से बाहर निकल कर पीड़ा के यथार्थ संसार की ओर दृष्टिपात किया है । निष्ठुर देवता को यथार्थ की विषमता की ओर अग्रसर करने का प्रयत्न किया है ।]

मेरे हँसते रँगरेलियाँ देखो !

शब्दार्थ—अधर=ओठ । राग=लालिमा । निष्फल=असफल, अस्त होता हुआ । सुमन=फूल । आलोक=प्रकाश । तिमिर=अंधकार । बेसुध रंगरेलियाँ =सहज खेल ।

भावार्थ—मेरे हँसते हुए अधरों को नहीं, संसार की आँखों के आँसुओं की ओर देखो । उन्हें रोकने का प्रयत्न करो । मेरे आँसू भरे नयनों को पोंछने का प्रयत्न मत करो वरन् विश्व के उपवन की मुरझाई हुई कलियाँ देखो । उन अभाव-पीड़ित बच्चों की ओर देखो जो यौवन के आने से पहले ही वृद्ध हो जाते हैं ।

आगे के छन्द में कवियित्री ने नश्वर वस्तुओं के उल्लास का चित्रण किया है।

मिटते हुए बादल भी इन्द्रधनुष के रूप में मुस्करा उठते हैं। (जब बादल बरस कर जल हीन हो जाते हैं तभी इन्द्रधनुष उदित होता है।) अस्त होता हुआ दिन भी सारे विश्व को लालिमा में रंग जाता है। संसार में सुनहली आभा बिखेर देता है। झर कर विलीन होता हुआ फूल भी आस-पास के सारे वातावरण को सुगन्धि से भर जाता है। एक छोटा सा दीपक बुझते-बुझते भी अमंद ज्योति बिखेर जाता है। हे निष्ठुर देवता! तुम नष्ट होने वाली वस्तुओं की इन सहज क्रीड़ाओं को देखो।

गल जाता घड़ियां देखो!

शब्दार्थ—पल्लव=पत्ता। वृन्त=डंठल। संसृति=संसार। चिर=अमर।

भावार्थ—एक छोटा सा बीज असंख्य नाशवान बीजों को बनाने के लिए अपने आप को मिट्टी में गला देता है। नए बीज भी नश्वर होते हैं और उनमें से प्रत्येक अपना नाश कर असंख्य बीजों को जन्म देता है। मरने के लिए पत्ता डंठल को त्याग देता है ताकि उस पर नए पत्ते खिल सकें। (शिशिर में सभी पत्ते झर जाते हैं और बसन्त में फिर वृक्ष उनसे लद जाते हैं।) हे प्रिय देखो! एक छोटा सा क्षण अनेक युगों और कल्पों को बिता देने के लिए मिट जाता है। (एक-एक क्षण करके ही तो युग और कल्प बीत जाते हैं।) संसार नई भ्रम-पूर्ण सृष्टि का निर्माण करने के लिए अपनी भूलों को भूल जाता है। (यदि मनुष्य को अपनी गलतियाँ याद रहें तो वह फिर गलतियाँ नहीं करेगा और संसार की हलचल शान्त हो जायगी।) हे प्रिय! आज तुम मेरे बन्धनों को नहीं संसार की जंजीरों के बन्धन देखो।

साँसें सुनाती हैं कि प्रिय आ रहा है। ठंडी साँसें कहती हैं कि वह रूठकर जा रहा है। आँखें उसे अपरिचित कहती हैं। हृदय कहता है कि मेरा और प्रियतम का नाता शाश्वत है। जब स्मृति मुझे यह बताती है कि वह सुन्दर नवीन सपनों में आया करता है, तब मैं उलझन में पड़ जाती हूँ। मेरा दुःख तो दबा रहता है किन्तु उससे मिलने की आशा का जो सुख होता है वह मेरी आँखों में आंसू के रूप में फूट पड़ता है। (अत्यधिक सुख के कारण भी मनुष्य

की आँखों में आँसू आ जाते हैं। यदि तुम मेरे हृदय में ही रहते हो तो तुम मेरा रूप धारण कर इस दुःख की अनुभूति करो। तुम दुःख से परिचित नहीं हो इसीलिए तुम दूसरों को दुःखी करने में नहीं हिचकते हो।

३८

कैसे दे आती !

शब्दार्थ—सित मसि=सफेद स्याही। मसि-प्याली=दवात। झरते तारक =आँसू बहाती हुई पुतलियाँ। द्वय=दो। वेसुधपन =मतवाला पन। छाया पथ=आकाश गंगा। विभ्रम इंगित=चंचल इशारे।

भावार्थ—हे प्रिय! मैं कैसे तुम तक मन की बात पहुँचाती। मेरे पास आँसुओं की अपार सफेद स्याही है। सोती हुई दोनों पुतलियाँ स्याही की दवातें हैं। मैं समय के चंचल कागजों पर स्मृति की लेखिनी द्वारा ठण्डी साँसों के अक्षर लिखती हूँ। किन्तु मैं अपने मतवाले पन में लिखना कुछ चाहती हूँ किन्तु कुछ और ही लिख जाती हूँ।

(चिट्ठी के लिखने में जितनी भी कठिनाइयाँ हो सकती हैं वे सब यहाँ प्रस्तुत हैं। स्याही सफेद है जो पढ़ी ही नहीं जा सकती। पुतलियों की दवातें टूटी हुई हैं और उनमें से निरन्तर स्याही बहती जा रही है। समय के कागज भी तेजी से हिल रहे हैं फिर उन पर साफ-साफ कैसे लिखा जा सकता है। श्वासों के अक्षर तुरन्त ही मिट जाने वाले हैं। इतना ही नहीं बुद्धि भी नशे में डूबी है, कुछ का कुछ लिख डालती है। फिर भला पत्र कैसे लिखा जाए।)

आकाश गंगा में छाया के समान चंचल कितने ही नक्षत्र प्रतिक्षण दिखाई देते और विलीन होते रहते हैं। उनके चंचल इशारे कभी रहस्यमय मालूम होते हैं और कभी परिचित से जान पड़ते हैं। नक्षत्रों के ये दूत विश्वसनीय नहीं हैं। वह विश्वस्त दूत नहीं मिलता जिसको मैं अपने हृदय की सारी बातें बता देती। (चिट्ठी लिखने की असमर्थता प्रथम छन्द में वर्णित है। दूत विश्वसनीय नहीं है इसलिये मौखिक सन्देश भी नहीं भेजा जा सकता।)

अज्ञात   धो जाती !

शब्दार्थ—अज्ञात=अनजान। उज्ज्वलतर=अत्यन्त चमकदार। प्रवाल तरणी=मूँगे की नौका। तम=अन्धकार। सस्मित=हर्षित। मदिरा=शराब, मस्ती, आलस्य। अनुराग=प्रेम, लाल रंग। विषाद=दुःख। मधुरस=आनन्द। अवगुण्ठन=पर्दा, घूँघट। तारक=पुतली। मूक तिमिर=शान्त अन्धकार। अभिसार=मिलन। मनुहारें=प्रार्थनाएँ।

भावार्थ—ऊषा नित्यप्रति ही किसी अपरिचित तट से मूँगे की नाव में ज्योतिर्मय किरणों को भर अन्धकार के नीलम जैसे तटों पर ले आती है। मोद भरी ऊषा का माधुर्य मेरी कहानी में हँसी भर जाता है।

(सूर्य मूँगे की नाव है। ऊषा से पहले छाया हुआ अन्धकार नीलम के किनारे है। ऊषा किरणों को लाद कर लाती है।)

अब संध्या का मानवीकरण है।

संध्या सुनहली आभा रूपी केसरी वस्त्र को धारण कर, माथे पर तारे की बिन्दी, नेत्रों में अन्धकार का काजल, कोमल चरणों में मेंहदी लगाए, प्रेम से भरी मस्ती और आलस्य की गागर छलकाती हुई आती है। (संध्या के समय सभी अलसा जाते हैं।) वह संध्या मेरे दुःख में सुख की कुछ बूँदें बरसा जाती है।

अगले छन्द में रात्रि का मानवीकरण है।

नए बादलों का घूँघट डाले, तारे रूपी नेत्रों में करुणा भरी दृष्टि लिए, अपनी आने की आहट द्वारा सपनों को जगा, साँस द्वारा चुपचाप अन्धकार फैला, जब रात्रि प्रिय से मिलन करती है तो अपने आँसुओं से मेरी वेदनाओं को धो जाती है।

इस छन्द में नायिका के प्रथम मिलन का चित्र खींचा है।

३९

[इस कविता को समझने के लिए वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद का संक्षिप्त ज्ञान आवश्यक है। इसके अनुसार जब माया रूपी दर्पण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो सृष्टि का उदय होता है। जीव भी माया रूपी दर्पण में दिखाई

देने वाला ब्रह्म का प्रतिविम्ब ही है। दर्पण टूट जाता है, माया का पर्दा हट जाता है, जीव ईश्वर में मिल जाता है। जीव और ब्रह्म का विरह मिट जाता है।]

टूट गया **निरुपम।**

शब्दार्थ—निर्मम=निष्ठुर। अभिसार=मिलन।

भावार्थ—हे प्रिय ! अब वह निष्ठुर दर्पण टूट गया है। (दर्पण निष्ठुर है क्योंकि उसी माया के शीशे के कारण ही तो विरह की यातना का आरम्भ हुआ।) उस दर्पण में दिखाई देने वाली मेरी परछाँई हँस उठी। माया का अवगुण्ठन हट जाने पर जीव को प्रसन्नता होती ही है। किन्तु कवियित्री को तो विरह ही प्यारा है, उसे अपने व्यक्तित्व में आसक्ति है। इसी ममता के कारण ही कवियित्री रो उठी। उस छाया की हँसी से और कवियित्री के रुदन से ही तो यह सुख दुःख मय संसार बना हुआ है। हे प्रिय ! जिस माया रूपी दर्पण में छिप कर मैं और तुम आँख मिचौनी खेलते रहे, जिसके कारण एक ही ब्रह्म अहम् और इदम् के रूप में अभिव्यक्त होता है वह अब टूट गया है।

हे प्रिय ! तुमने अपने उल्लास में जिस अनुपम माया के दर्पण का निर्माण कर सृष्टि की रचना की थी, अपने आपको दो रूपों में—प्रेमी और प्रिया अथवा ब्रह्म तथा जीव—अभिव्यक्त करने के लिए, दोनों का मिलन दिखाने के लिए, तथा भूलों से भरे हुए इस संसार का निर्माण करने के लिए तुम ने जिस दर्पण का निर्माण किया था, वह अब टूट गया है।

कैसा पतझर **अन्तरतम ?**

शब्दार्थ—कुन्तल=केश। अङ्गराग=उबटन। आंजूँ=आँखों में लगाऊँ।

भावार्थ—जब माया का दर्पण टूट गया, इदम् अहम् में लीन हो गया अथवा सारी सृष्टि ब्रह्म में समा गई, तो फिर न पतझर रहा न सावन, न मिलन रहा न विरह, क्योकि द्वैत-भाव मिट गया। इतना ही नहीं यह क्षणभंगुर जीवन भी मिट गया, न दिन रहा न रात, सुख-दुःख भी समाप्त हो गए। आज केवल या

तो तुम्हारी सत्ता है या अन्धकार की। केवल ब्रह्म ही शेष रहा, बाकी सब उसी में समा गया।

कवियित्री कहती है कि जब मेरा अस्तित्व ही मिट गया, और दर्पण भी टूट गया, तो अब मैं किस दर्पण में देखकर अपने केश सँवारूँ, कैसे अपने शरीर पर पुलकित कर देने वाला उबटन लगाऊँ, अपने नयनों में किस प्रकार स्वप्नों का काजल लगाकर उन्हें रमणीय बनाऊँ और किससे प्रेम करूँ, किस से मान करूँ, और किस की शोभा से अपने हृदय को भर लूँ ?

आज कहाँ ... **प्रियतम !**

शब्दार्थ—अवगुण्ठन =परदा।

भावार्थ—जब दर्पण के टूट जाने पर द्वैत-भाव मिट गया, तो मेरा अस्तित्व कहाँ रहा। मेरे इस अहम् में ही तुम छिपे थे, यह अहम् ही मेरे लिए बन्धन स्वरूप है और यह तुम्हारी क्रीड़ा का साधन भी है। अब सब कुछ तुम में समा गया। मेरा अहं-भाव मिट गया। मैं भी तुम में समा गई। जब मैं और तुम दोनों एक हो गए, तो मेरा दुःख तुम में समा गया और तुम्हारा आनन्द मुझ में। बस, अब तुम मुझ में अपना आनन्द देखो और मैं तुम में अपना दुःख देखूँगी।

विशेष—महादेवी को दुःख से प्रेम है। जब कवियित्री का व्यक्तित्व प्रियतम में लीन हो गया, वहाँ भी वह अपने दुःख को ही ढूँड़ती है।

४०

[इस कविता में कवियित्री स्वयं को एक चित्र मानती है और प्रियतम को अपना चित्रकार। कवियित्री चित्रकार से प्रश्न करती है कि क्या मेरे रूप का, भावों तथा स्मृतियों का यह चित्र नश्वर है ?]

कमल दल ... **साज मेरे ?**

शब्दार्थ—चितेरे=चित्रकार। तडित्=बिजली। शिरीष-प्रसून=एक प्रकार का फूल।

भावार्थ—हे मेरे चित्रकार ! क्या मैं कमल के पत्ते पर अङ्कित किरणों

का एक चित्र हूँ ? जिस प्रकार सूर्य उदित होता है, कमल खिल उठता है किन्तु संध्या काल में सूर्य की किरणें छिप जाती हैं तथा कमल संपुटित हो जाता है, क्या उसी प्रकार मेरे व्यक्तित्व का यह चित्र भी नष्ट हो जाएगा ?

नीचे के दोनों छन्दों में कवियित्री ने अपने प्रियतम का चित्रकार से साँग-रूपक बाँधा है।

चित्र की रेखाएँ बनाने के पश्चात्, चित्रकार उसमें रङ्ग भरता है। उसके पास प्यालियाँ होती हैं जिनमें रंग भरा होता है। उसके पास तूलिका भी होती है जिसके सहारे वह चित्र में रंग भर देता है। कवियित्री अपने चित्रकार से कहती है—

बादल रूपी प्यालियों को चाँदनी के रङ्ग से भरकर इन्द्रधनुष रूपी तूलिका से तुमने मेरे हृदय को प्यार से रङ्ग दिया है। क्या समय रूपी एक नन्हीं सी आँसू की बूँद से मेरे सारे रङ्ग धुल जाएँगे ?

तुमने मेरी स्मृति में बिजली का रङ्ग भर दिया। मेरी वेदना में दुःख-भरी वर्षा की रजनी भर दी क्योंकि मेरी आँखें वेदना में सदैव बरसा करती हैं। तुमने मेरे सपनों में बसन्त के प्रभात का सा सौन्दर्य और आनन्द भर दिया। क्या मेरा यह सारा वैभव शिरीष के फूल के समान ही मुरझा जाएगा ?

है युगों ... **प्राण मेरे ?**

अब कवियित्री यह वर्णन करती है कि मैं अनादि काल से उस संसार में जन्म लेती रही हूं, उस विरह की करुणा को भोगती रही हूँ।

शब्दार्थ—सुरभित=सुगन्धित। रेणु=धूल। निश्वास=साँस। निमिष=क्षण। दृग=नेत्र।

भावार्थ—मेरा तो इस जीवन की राह से युग-युग का परिचय है। अनादिकाल से मैं जन्म लेती और प्रियतम के वियोग को सहन करती रही हूँ। यहाँ की धूल भी मेरे प्रेम से सुगन्धित हो गई है। क्या नाश रूपी एक साँस से ही मेरे ये पुरातन चिह्न मिट जायेंगे ? क्या मेरा और संसार का यह युग-युग का परिचय समाप्त हो जाएगा ?

मेरे चरणों की ध्वनि सुनकर समय के क्षण नाचने लगते हैं। मैंने अपने नेत्रों द्वारा निस्सीम को भी नाप लिया है। भाव यह है कि मैं हमेशा से चलती रही और प्रियतम की अनन्त राह देखती रही। क्या अब मेरे प्राण मरण के हृदय में समा सकेंगे ? मुझ से काल भी भयभीत है, निस्सीम को भी मैंने ससीम बना दिया है, फिर भला मृत्यु मुझे कैसे निगल सकती है। मृत्यु तो ससीम वस्तुओं को नष्ट कर सकती है। असीम को उससे कोई भय नहीं। और जिसने असीम को भी ससीम कर दिया क्या वह मृत्यु में समा सकता है ?

श्रांक दी

उपहार मेरा ?

अब कवियित्री सारी सृष्टि में अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति देखती है।

शब्दार्थ—अवसाद=दुःख। लास=नृत्य।

भावार्थ—हे प्रिय, तुमने मेरे हृदय की न मिटने वाली प्यास को संसार भर में क्यों फैला दिया है ? (सारा संसार अशांत है, सुख का प्यासा है।) मेरी आँसू भरी पीर, पुलक, कम्पन, तथा चंचलता तुमने क्यों संसार के हृदय में भर दी है ? क्या मैं मिट जाऊँगी और यह दुःख, आँसू, कम्पन आदि मेरे उपहार अमर हो जाएँगे ? क्या ये सदैव संसार के हृदय में विद्यमान रहेंगे ?

४१

[इस कविता में कवियित्री को प्रकृति के उल्लास से प्रिय के आगमन की आशा होती है। आज प्रकृति क्यों इतनी प्रफुल्ल है ? कहीं मेरे प्रियतम तो आने वाले नहीं हैं ? जिस प्रकार किसी महान् व्यक्ति के आने पर आनन्द-मंगल मनाया जाता है, उत्सव, गान, नृत्य आदि की आयोजना की जाती है, उसी प्रकार कवियित्री को प्रकृति में किसी के स्वागत में उत्सव होता दिखाई देता है। कविता के पहले दो छन्दों में जो व्यंग्य साँगरूपक चलता है वह अत्यन्त कलामय कोमल तथा सरस है।]

मुस्काता

मतवाले हैं !

शब्दार्थ—अलि=सखी। विद्युत=बिजली। स्वर्णपाश=सुनहला बंधन। मृदु-मानस=कोमल हृदय। कनक=सोना। रजत=चाँदी। मधु-प्याले=रस के प्याले। हिमकण=ओस की बूँदें। मलयानिल=मलय दिशा से आने वाला

पवन जो शीतल, मन्द, सुगन्धित होता है। परिमल=सुगन्धि । विस्मित= आश्चर्य चकित।

भावार्थ—हे सखि ! आज का आकाश कुछ संकेत करता हुआ मुस्करा रहा है, क्या मेरे प्रियतम आने वाले हैं ? (प्रकृति में सर्वत्र आनन्द दिखाई दे रहा है।)

(महान् व्यक्ति के स्वागत में चारों ओर सजावट की जाती है। सुनहले बन्दनवार बाँधे जाते हैं। गीतों की स्वर लहरी गुंजार करने लगती है। लोग आनन्द विभोर होकर रस में डूब जाते हैं।)

रोता हुआ बादल बिजली के चंचल सुनहले बन्धन में आबद्ध होकर मुस्करा उठता है। सागर अपने हृदय की अग्नि को कल-कल ध्वनि के मधुर संगीत से सहलाता है। दिन रात्रि को सन्ध्या के स्वर्णिम प्याले में रस भरकर देता है और रजनी दिवस को चाँदनी के चाँदी के प्याले में रस भर देती है। सर्वत्र आमोद-प्रमोद हो रहा है।

(किसी के स्वागत में नृत्य होता है। वातावरण सुगन्धित कर दिया जाता है। साज-सज्जा को देखकर पथिक आश्चर्य चकित होकर, बार-बार उसे निहारते हैं।)

तारक रूपी परियां नृत्य करती हुई अपने नूपुरों के ओस रूपी मोती बिखेरती हैं। मलय पवन सुगन्धि से भरकर ओस की बूँदों के ऊपर भ्रमण कर रहा है। और मतवाले क्षण आश्चर्य चकित पथिक के समान बार-बार रुक से जाते हैं।

'दिन निशि को...'—में क्रमालङ्कार है।

सघन वेदना छाले हैं !

प्रियतम के आने की आशा से प्रियतमा को जो आनन्द होता है, अब उसका वर्णन है।

शब्दार्थ—सघन वेदना=गम्भीर दुःख। स्मित=हँसी। कोष=खजाना।

भावार्थ—प्रियतम के आने की आशा में बीते हुए क्षण याद आ जाते हैं और गम्भीर दुःख के अन्धकार में सुख की स्वर्णिम ज्योति बिखर जाती है। मेरी साँसे आँसुओं से भीगे ओठों पर मुस्कराहट के नवीन इन्द्रधनुष रच रही हैं। आज मेरे स्वप्न आँखों के आँसुओं के खजाने का पहरा दे रहे हैं। (प्रिय-

तम के आगमन की आशा में स्वप्न साकार होते दिखाई देते हैं। इसीलिए आँसुओं का प्रवाह रुक गया है।)

आज न जाने कैसी उलझन हो रही है! नेत्रों में सुनने की शक्ति आ रही है तथा कानों में देखने की शक्ति आ गई है। इन दृश्यों को देखकर मुझे प्रियतम के मधुर आलाप सुनाई दे रहे हैं, तथा उनके वचनों का स्मरण कर उनके दर्शन का सुख प्राप्त हो रहा है। हे सखि! आज मेरे रोम-रोम में हृदय की सी धड़कन समा गई है। मेरा शरीर बार-बार पुलकित हो उठता है। मेरे हृदय के घाव फूल बन गए हैं। प्रियतम से मिलने की आशा में सारे दुःख भूल गए हैं।

४२

[इस कविता में कवियित्री यह कामना करती है कि जो कुछ भी करुण है, नश्वर है, असुन्दर है, उस पर मेरा अधिकार हो और जो सुखमय है, सनातन है तथा सुन्दर है उस पर मेरे प्रियतम का अधिकार हो। इस कविता में भी कवियित्री का दुःख-प्रेम प्रकट होता है।]

झरते

घन मेरे हों।

शब्दार्थ—आभा=कांति। मुक्ताहल=मोती। तारक-माला=तारों की माला। रजत=चाँदी। कंचन=सोना।

भावार्थ— कवियित्री कामना करती है कि मेरे नेत्र नित्य ही आँसू बरसाते रहें। जो तारों की माला युग-युग से कान्तिमान हो रही है तथा जो अपनी चमक से मोतियों का निर्माण सी करती लक्षित होती है उस पर तो मेरे प्रियतम का अधिकार हो तथा विजली के क्षणभंगुर कङ्कणों पर मेरा अधिकार हो।

रजनी ने पिघली हुई चाँदी के समान उज्ज्वल चाँदनी से जिस संसार को लीप दिया है, तथा दिवस ने तरल सोने के समान कान्तिमान धूप से जिस आकाश को रङ्ग दिया है वह परम सुन्दर धरती और आकाश मेरे प्रियतम के अधिकार में रहें और प्रतिक्षण मिटने वाले नवीन मेघों पर मेरा अधिकार हो।

पद्म पराग   **मेरे हों।**

शब्दार्थ—पद्मराग=लाल मणि। अलि=भँवरें। नन्दन=स्वर्ग का वन। तृण=तिनके। स्पन्दन=कम्पन, चंचलता।

भावार्थ—लाल मणियों सी रमणीक कलियों से सुशोभित, तथा नीलम से सुन्दर भँवरों की गुंजार से ध्वनित, सदैव सुगन्धित रहने वाले नन्दन वन पर मेरे प्रियतम का अधिकार हो, तथा आँसुओं के भार से झुके हुए तिनकों पर मेरा अधिकार हो।

अन्धकार के समान शान्त, आकाश के समान विराट्, सुख-दुःख से दूर अनिर्वचनीय शून्य तो मेरे प्रियतम का हो, और सुख-दुःख से भरा हुआ यह चंचल जीवन मेरा हो।

जिसमें कसक   **निर्मम मेरे हों !**

शब्दार्थ—सुधि का दर्शन=स्मृति की पीड़ा। आवर्त्त=भँवर। सस्मित=हँसता हुआ। परिमलमय=सुगन्धित। निर्मम=निष्ठुर।

भावार्थ—जिस निर्वाण अथवा मुक्ति में प्रिय में मिल जाने के साधन कसक तथा स्मृति की पीड़ा नहीं है, वे मेरे प्रियतम के बने रहें, मुझे तो केवल जीवन के सैकड़ों बन्धन ही मिलें।

वह सनातन सृष्टि और प्रलय जिसमें एक बुलबुले में असंख्य भँवर भरे हैं; जिसमें एक कण में सैकड़ों परिवर्त्तन विद्यमान हैं, प्रियतम के हों और निर्माण तथा अस्त के कुछ पल मेरे हों।

आनन्द से परिपूर्ण, पुलक और सुगन्धि से ओतप्रोत, इन्द्र धनुष के समान आकर्षक रंगों से भरा यह सारा संसार और प्रत्येक कण उनका हो, मेरी तो केवल यही इच्छा है कि निष्ठुर प्रियतम स्वयं एक पल भर के लिए मेरे हो जाएँ।

४३

[इस कविता में कवयित्री अपने प्रियतम के विरह में ही मिलन मानती है, दुःख में ही सुख मानती है। विरह, आँसू, दुःख तथा निश्वासें—यही तो वह सम्पत्ति है जिससे अलौकिक प्रियतम की प्रियतमा को प्रेम होता है !]

पाणपिक उत्पात रे कह !

शब्दार्थ—प्राण-पिक=प्राण रूपी पपीहा। क्रन्दन=विलाप । रुदन उत्पात= बवंडर ।

भावार्थ—हे प्राण पपीहे ! तू प्रिय का नाम ले । मैं उस अनन्त प्रियतम में विलीन हो गई हूँ । वह मेरे इस छोटे से हृदय में बँध गया है । मैंने उसे अपने हृदय में बसाकर अपने आप को भुला दिया है । इसलिए हे प्राण-पपीहे ! तू विरह की रजनी को भी मिलन का अटल प्रातःकाल मान । जब मैं प्रियतम में लीन हूँ और वह मेरे हृदय में है तो फिर विरह कैसा ?

मेरी आँखों के आँसू दुःख रूपी अतिथि का सत्कार करने के लिए उसके चरणों को धोते हैं, मैंने दुःख को आदर के साथ स्वीकार किया है, किन्तु हे हठीले प्राण ! यह मेरा विलाप नहीं है; यह तो वर्षा भरा सावन का महीना है ।

जिसे दिन मुग्ध करके ले जाता है और जो रात को स्वप्न बन-बनकर लौट आती है, वह मेरी नींद नहीं, वह तो जागरण का तूफान है । (जब तक मनुष्य अपने तथा ब्रह्म के नित्य सम्बन्ध की अनुभूति नहीं करता वह जागता हुआ भी सोया हुआ है । और जो ब्रह्म से प्रणय-भाव स्थापित कर लेता है, उसकी निद्रा ही वास्तविक जागरण है ।)

एक उपहास रे कह ।

शब्दार्थ—प्रिय-दृग-श्यामता=प्रियतम के नेत्र की कालिमा । स्मित की विभा=मुस्कराहट का प्रकाश, हास का वर्ण श्वेत माना जाता है । रिस रहा=बह रहा । क्षणिक संचय=नश्वर राशि । विन्दु=बूँद । उपहास= मजाक ।

भावार्थ—प्रियतम के नेत्रों की कालिमा के समान काली रात और प्रियतम के ह्रास के समान कांतिमान दिवस, रात और दिन नहीं है वरन् ये तो प्रियतम के उपहार हैं । उन्हें देखकर मुझे प्रियतम का स्मरण हो आता है ।

मेरी प्रत्येक साँस में धड़कनें भरी हुई हैं । मेरे नेत्रों से हृदय आँसू बन कर बह रहा है । यह प्रिय का दिया हुआ दान नहीं है वरन् निर्वाण का

वरदान है । (कवियित्री को धड़कन तथा आँसुओं में निर्वाण का सुख प्राप्त होता है ।)

जीवन क्या है ? चंचल क्षणों की नश्वर राशि । यह उसी प्रकार क्षणिक है जिस प्रकार कि बालू में गिरी हुई बूँद का अस्तित्व क्षणिक होता है । किन्तु हे प्राण पिक ! तू इसे जीवन मत कह । यह तो प्रियतम द्वारा किया गया एक निर्मम मजाक है ।

४४

[इस कविता में कवियित्री ने पावस का सरस चित्रण किया है । मेघों में उसे कोई सन्देश दिखाई देता है । अन्त में प्रकृति की यह कमनीय सरसता वियोगिनी का हृदय सुख-दुःख से भर देती है—सुख प्रकृति के सौन्दर्य के कारण, दुःख प्रियतय के विरह के उद्दीप्त होने के कारण ।]

लाए कौन **हीरक के कण ।**

शब्दार्थ—गर्वित=गर्वीला । नत=झुकना । निस्पन्द=शान्त । अलसित=अलसाई हुई । परिमल-अञ्चल=सुगन्धित वायु रूपी अञ्चल । लघु-हीरक=छोटे हीरे ।

भावार्थ—नवीन मेघ कौनसा सन्देशा लेकर आए हैं ? मेघों में आच्छन्न हो जाने पर मेघों का आकाश झुक आया है । सदैव शान्त रहने वाले उस आकाश के हृदय में भी सावन घटाओं के रूप में पुलकित हो उठा है ।

जिस प्रकार मेघ-गर्जन सुनकर सोई हुई स्त्री चौंक उठती है, उसी प्रकार सोई हुई रात चौंक उठी तथा उसके श्याम पुलकित तथा कम्पित हाथों में बिजली के स्वर्णिम कङ्कन चमकने लगे ।

दिशा का सुगन्धित अञ्चल भी चञ्चल हो गया हैं । सुगन्धि से भरी हुई वायु तेजी से चल रही है । और हे सखि ! जिस प्रकार हार के टूट जाने पर हीरे के कण बिखर जाते हैं उसी प्रकार जुगुनू चारों ओर बिखरे हुए दिखाई दे रहे हैं ।

जड़ जग **विस्मित लोचन ।**

शब्दार्थ—स्पन्दित=कम्पित । अवनी=धरती ।

शब्दार्थ—जड़ संसार काँप उठा । अन्य जड़ वस्तुएँ भी चञ्चल हो उठीं । सर्वत्र एक नवीन स्फूर्ति तथा चेतना के दर्शन होने लगे और धरती के सञ्चित सपने अंकुरों के रूप में उदित हो गए । हृदय के छिपे भाव भी उद्बुद्ध हो उठे ।

चातक स्वाँति-नक्षत्र के जल के लिए चिल्लाने लगा । कोयल सकुचा गई । मस्त मोरों ने एकान्त स्थान पर वर्षा की झड़ियों के समान ही नाच आरम्भ कर दिया ।

इस दृश्य को देखकर मेरा छोटा सा हृदय खून तथा दुःख से भर गया और मेरे आश्चर्य चकित नेत्रों में आँसू की बूँद सहसा छलक उठीं ।

४५

[इस कविता में प्रियतमा अपने प्रियतम को सुलाने का प्रयास करती है । कोमल भावों में प्रेम उमड़ा पड़ता है ।]

पहले प्रिया सो रही थी । जीव मोह की निन्द्रा में निमग्न था । अब प्रिया ने अपने प्रियतम को पहचान लिया है । इसलिए अब वह लोरी गा कर उसे सुलाना चाहती है ।

तुम सो जाओ **फैलाऊँ ।**

शब्दार्थ—नभ-मन्दिर=आकाश रूपी भवन । मणि-दीपक=तारों के दीप । शूल=दुःख । मोती=आँसू ।

भावार्थ—हे प्रिय ! अब तुम सो जाओ और मैं लोरी गाती हूँ । मुझे सोए हुए युग बीत गए तब तुम निरन्तर लोरी गाते रहे । अब मैं तुम्हारे लिए अपनी आँखों से सेज बिछा दूँ ।

हे प्रिय ! तुम्हारे आकाश रूपी भवन के तारा-दीपक रोज सवेरे बुझ जाते हैं । आओ अब में अपने ऐसे प्राणों को जलाती हूँ जिनके कण-कण में बिजली भरी है ।

तुम क्यों जीवन के इन दुःखों में बार-बार आते हो । यहाँ असंख्य काँटे बिखरे हैं और तुम कोमल हो । तनिक ठहरो, मैं अपनी आँखों के मोतियों से तुम्हारा पथ प्रशस्त कर दूँ ।

पथ की **दे जाऊँ ।**

शब्दार्थ—रज=धूल ।

भावार्थ—हे प्रिय ! मार्ग की धूल में तुम्हारे अनजान चरणों के चिह्न बने हैं। मैं इस धूल को अंजन बना कर क्यों न अपनी आँखों में बसा लूँ ।

मेरा हृदय विरह की आग में जलकर प्रेम की सुगन्धि बिखेर देता है । तब तुम्हारी स्मृति मेरे हृदय को जलाने लगती है । मैं अपने नेत्रों को पानी-पानी करके क्यों इस स्मृति को न सींचूँ ताकि तुम्हारी स्मृति पल्लवित हो सके ।

तेरी माला की कलियाँ मेरे हृदय के फूलों में मिल जाती हैं । मैं क्यों अपने हृदय के सञ्चित काँटों को संसार को दे दूँ ?

अपनी असीमता **सिखलाऊँ ।**

शब्दार्थ—मुकुर=शीशा ।

भावार्थ—तुम मेरे हृदय के छोटे से दर्पण में अपनी असीमता का अनुभव करो । (सीमा के मुकाबले में ही असीम को समझा जा सकता है ।) मैं प्रत्येक क्षण को आँसुओं से धो-धोकर दर्पण क्यों न बना दूँ ताकि तुम उसमें सदैव अपने रूप को देख सको ।

जब मैं हँसती हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो तुमने मुझे स्पर्श किया है । जब रात में रोती हूँ तो तुम्हारी स्मृति आ जाती है । मैं क्यों संसार के प्रत्येक कण को हँसना और रोना न सिखाऊँ । भाव यह है कि संसार के प्रत्येक कण में तुम्हारी सत्ता है । मैं इस सत्य का प्रकाश क्यों नहीं करूँ ?

४६

[इस कविता में यह प्रकट हो जाता है कि कवियित्री को दुःख से कितना अधिक प्रेम है। वह अपने प्रियतम को भी दुःख के रूप में ही आने का निमन्त्रण देती है । इससे भी यह स्पष्ट है कि जिसने जीवन में दुःख का अनुभव न किया हो, कठोर साधन न की हो, वह भावना के प्रेम का अधिकारी नहीं है ।]

तुम दुख बन **बना जाना !**

शब्दार्थ—मृदुपटल=कोमल गुलाब । विभूति=राख ।

भावार्थ—हे प्रिय ! तुम मेरे जीवन के मार्ग में दुःख बनकर ही आना। जिस प्रकार कोमल गुलाब कांटों में खिलता है, उसी प्रकार मेरे कोमल जीवन को भी विपत्तियों में ही विकसित होने देना। अपने हृदय को बिंधवाना नहीं सीखो, वह कभी भी प्रियतम के गले का हार नहीं बन सकता। (जिस प्रकार सुई में पिरो कर ही माला बनाई जाती है, उसी प्रकार साधक जीवन में विपत्तियों से बिंध जाता है, तभी वह ईश्वर के समीप पहुँच पाता है। 'सीस उतारैं हाथि करि, सो पैसे घर माँहि।')

जिस प्रकार सुगन्धि एक बार कली से उड़कर फिर लौटकर कली में नहीं समा सकती। उसी प्रकार मैं भी प्रिय से भिन्न होकर फिर प्रिय में नहीं समा सकती। किन्तु साथ ही यह बात भी है कि जिस प्रकार सुगन्धि के अस्तित्व का मूल कली है, उसी प्रकार मेरे जीवन का आधार भी मेरा प्रियतम है। सुगन्धि को कली द्वारा ही जानते हैं। उसी प्रकार मुझे लोग प्रियतम के कारण ही जानते हैं।

हे प्रिय ! तुम मेरे हृदय को अपने वियोग की ज्वाला में धीरे-धीरे जलने दो। और जब यह राख बन जाए तो फिर तुम आकर इस पर अपने चरणों के चिह्न अङ्कित कर देना ? (नागमती रत्नसेन के वियोग में कहती है—

यह तन जारौं छार कै, कहुँ कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाउ॥)

वर देते हो **देंगी पहचान !**

शब्दार्थ—विद्युत्=बिजली।

भावर्थ—हे प्रिय यदि तुम वर देना चाहते हो तो मैं यह वर माँगती हूँ कि तुम मेरी तथा अपनी यह आँख-मिचौनी स्थायी बना दो। हमेशा मैं तुम से अलग रहूँ और तुम्हें ढूँढ़ती रहूँ। जब तक मैं जीवित हूँ मैं तुम्हारी खोज करती रहूँ। अपने व्यक्तित्व को मिटाकर ही मैं तुम्हें छू सकती हूँ। इसलिए मैं तुमसे मिलन का वर नहीं माँगती क्योंकि मिलन का अर्थ होगा मेरे व्यक्तित्व का नाश। मैं तो तुम से विरह का वर माँगती हूँ और यही मेरा जीवन है।

हे प्रिय ! जब मेरे हृदय में तुम नाम की प्रतिध्वनि जाग उठे, जब मेरा मन सदैव तुम्हारा नाम पुकारा करे तो संसार उसे इसी प्रकार समझे जिस

प्रकार वह बादल में बिजली का प्रकट हो जाना तथा छिपजाना समझता है। जिस प्रकार बिजली क्षण भर के लिए चमककर बादल को आलोकित कर देती है और फिर मिट जाती है, उसी प्रकार तुम्हारी प्रतिध्वनि भी मेरे जीवन को आलोकित तो कर दे, किन्तु जिस प्रकार बादल का व्यक्तित्व बना रहता उसी प्रकार मेरा व्यक्तित्व भी संसार के सामने बना रहे !

हे प्रिय ! तुम चाहे चुपचाप आकर मेरे दुःख में, मेरे सुख में, मेरी श्वासों में तथा मेरे सपनों में बस जाओ, तो भी मेरा मन यह कह देगा कि ये मेरे प्रियतम हैं और मेरी आँखें बिना देखे ही यह कह देंगी कि ये पहचाने हुए हैं। तुम चाहे मुझसे कितने ही छिपो, मेरा हृदय और मेरी आँखें तुम्हें पहचान ही लेंगे।

जड़ जग **जगा जाना !**

शब्दार्थ—घन आतप=तेज धूप। संसति--सृष्टि।

भावार्थ—हे प्रिय ! जब तुमने इस संसार के अचेतन अणुओं में अपनी हँसी द्वारा चेतना फूँक दी, तो मेरी आँखों ने ही अपने आँसुओं से सींच कर इन्हें विकसित किया, तथा इन्हें हँसना और खिलना सिखाया।

जिस प्रकार तेज धूप में कुहरा विलीन हो जाता है, उसी प्रकार यह सारा संसार मुझ में लय हो जाएगा। हे प्रिय ! तुम अपने रागों से मेरी इस छोटी सी जीवन की वीणा को निनादित मत कर देना। (कवियित्री यह कामना करती है कि मेरे जीवन में एकमात्र तुम्हारा ही अधिकार न हो वरन् संसार का भी होगा।)

४७

[कवियित्री महात्मा बुद्ध तथा भगवान् कृष्ण का स्मरण करा कर मनुष्यों को जागरण का सन्देश देती है।]

जाग बेसुध **दुलारे जाग !**

शब्दार्थ—बेसुध=बेहोश। हीरक हार=हीरों का हार।

भावार्थ—हे बेहोश मनुष्य जाग उठ ! भगवान् बुद्ध ने हीरों के हार त्याग दिए, सारा राज्य त्याग दिया, तथा अपने हृदय को जनता के दुःख से उमड़े हुए

आँसुओं से सजाया। (सिद्धार्थ राजकुमार था। किन्तु उसने जनता के दुःख दूर करने के लिए राज्य का त्याग कर दिया तथा प्रत्येक व्यक्ति के दुःख में रोया।) फिर उसने द्वार-द्वार पर दुःख की भिक्षा माँगी—सारे संसार के कष्टों को अपने ऊपर ले लिया। और जिस सिद्धार्थ ने अपने स्पर्श मात्र से ही काँटों को फूल बना दिया और अग्नि को चन्दन के समान शीतल बना दिया—व्यक्तियों की विपत्तियों को हर्ष में तथा दुःख को शीतलता में बदल दिया। सुन रे बेसुध व्यक्ति ! आज फिर उसी सिद्धार्थ की पग ध्वनि सुनाई दे रही है। आज के संघर्ष पूर्ण युग में बार-बार महात्मा बुद्ध के उपदेशों का स्मरण किया जाता है। हे करुणा के प्यारे ! तू जाग उठ। (मनुष्य करुणा का दुलारा है क्योंकि करुणा ही उसका उद्धार करती है। महात्मा बुद्ध की महाकरुणा से ही जनता को शान्ति का अनुभव हो सका।)

शंख में ... वृन्दाविपिनवाले जाग !

शब्दार्थ—अधर=ओंठ। छविमान=रमणीय। वृन्दाविपिन=वृन्दावन।

भावार्थ—भगवान कृष्ण के संख की ध्वनि में शत्रुओं का नाश छिपा रहता था। (प्राचीनकाल में योद्धा युद्ध-भूमि में उतरने पर अपने-अपने शंख बजाया करते थे।) भगवान की मुरली के संगीत में जीवन और आनन्द का वरदान छिपा होता था। भगवान के नेत्रों में जीवन था। जिस पर उनकी दृष्टि पड़ती थी उसे नया जीवन प्राप्त हो जाता था। भगवान् के ओठों में रमणीय सृष्टि अवसित थी। उन्होंने बाँसुरी के सङ्गीत से प्रेम का सागर भर दिया। (मुरली बजा-बजा कर वे गोपियों को रिझाया करते थे।) आज उसी कृष्ण की प्रतिध्वनि संसार में गूँज रही है। हे वृन्दावन के निवासी ! जाग उठ।

यहाँ 'वृन्दाविपिन वाले' शब्द केवल वृन्दावन में रहने वाले के लिए नहीं, संसार के रहने वाले के लिए प्रयुक्त हुआ है।

'अधर में सृष्टि'—एक बार बाल-कृष्ण ने मिट्टी खाई। जब माता यशोदा को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने बालक को डाँटा। नटखट बालक कृष्ण बोला कि मैंने मिट्टी नहीं खाई। माता ने उसे मुँह खोलने के लिए

कहा, जब उसने मुँह खोला तो उसमें माता यशोदा को तीनों लोक दिखाई दिए।

अन्तिम छन्द में कवियित्री यह कहती है कि जिस प्रकार गुलाब काँटों में, अन्धेरे में तथा आँसुओं में भी प्रफुल्ल रहता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी विपत्तियों के बीच रहकर भी अपने जीवन का विकास करना चाहिए।

रात के **प्यारे जाग।**

शब्दार्थ—पथहीन तम=ऐसा अन्धकार जिसमें मार्ग स सूझता हो। असीम सुवास=अक्षय सुगन्धि। सुभग=सुन्दर।

भावार्थ—रात के घने अन्धकार में भी गुलाब से टकराने वाली वायु उसकी सुगन्धि को सर्वत्र बिखेर देती है। सुगन्धित वायु के झोंके ही गुलाब के श्वास हैं। गुलाब काँटों की शय्या में जन्म लेता है। उसका ताज ओस के आँसुओं का बना है। उसी प्रकार हे सुन्दर मानव ! तू भी उस गुलाब के समान ही निराशा, दुःख तथा आँसुओं के बीच भी अपने व्यक्तित्व का विकास कर छोटे से छोटे जीव को भी अपनी करुणा की सुगन्धि प्रदान कर। अब मोह की रात बीत गई है, जागरण की बेला आगई है।

४८

मेरे विचार में जब निर्गुण-भक्ति में माधुर्य भाव का समावेश होता है तब रहस्यवाद का जन्म होता है। इस कविता से रहस्यवाद की यह परिभाषा पुष्ट होती है।

क्या पूजा **नर्तन रे।**

शब्दार्थ—अभिनन्दन=स्वागत। पद रज=पाँव की धूल। अक्षत=चावल। स्नेह=प्रेम, तेल (श्लेष)। तारक=पुतली। उत्पल=कमल। उन्मी-लन=विकास। स्पन्दन=कम्पन।

भावार्थ—कवियित्री कहती है कि मैं उस असीम तथा निर्गुण की क्या पूजा करूँ ? मेरा तो जीवन प्रतिक्षण उसकी पूजा ही है।

पूजा के लिए मन्दिर की आवश्यकता होती है। भगवान के चरण धोए जाते हैं, और चन्दन आदि चढ़ाया जाता है। भगवान की पूजा में दीपक जलाए जाते हैं, फूल चढ़ाए जाते हैं, धूप दिया जाता है और भगवान को प्रसन्न करने के लिए कीर्तन होता है तथा ताल देने वाले ताल देते है। कवियित्री कहती है कि ये सब बातें मेरे जीवन में पाई जाती हैं।

मेरा यह क्षणभंगुर शरीर-ही उस अनन्त का सुन्दर मन्दिर है। मेरी प्रत्येक साँस प्रिय का स्वागत करती है। उसके चरणों को धोने के लिए मेरी आँखों में आंसू उमड़ आते हैं। मेरे पुलकित रोम ही पूजा के चावल हैं और मेरी मधुर पीड़ा ही चन्दन है। प्रेमभरा मेरा यह हृदय घी भरे दीपक के समान प्रतिक्षण जला करता है। मेरे नयनों की पुतलियों में नवीन कमलों का विकास होता है जो मैं भगवान पर चढ़ाती हूँ, मेरे कम्पन ही धूप है, मेरे अधर भगवान का नाम रटा करते हैं और मेरी पलकों का नृत्य ताल देता रहता है।

विशेष—साँगरूपक की छटा रमणीक है।

४६

[इस कविता में कवियित्री अपने जीवन को साँध्य गगन के समान बनाती है। सारी कविता में साँग रूपक चलता है। कला तथा अनुभूति की दृष्टि से यह रचना उच्चकोटि की है।]

प्रिय सांध्य **चितवन** !

शब्दार्थ—साँध्य गगन=संध्या का आकाश। विराग=विरक्ति। अरुण= लाल। वीतराग=राग रहित। सुधि भीने=स्मृति से सुगन्धित। साध— इच्छा। तिमिर सघन=घना अन्धकार। नभ=आकाश।

भावार्थ—हे प्रिय ! मेरा जीवन सन्ध्या के आकाश के समान है। सन्ध्या के समय आकाश धुँधला होता है, लालिमा भी छाई होती है, चारों ओर वस्तुओं की छाया गहरी होती दिखाई देती है तथा आकाश में रँगीन बादल भी दिखाई देते हैं। कवियित्री कहती है कि मेरी विरक्ति का धुँधला आकाश है जिसमें मेरे सुहाग की ललिमा बिखरी हुई है। मेरा शरीर छाया के समान ही

काकर्षण रहित हो गया है और इस विराग के आकाश में स्मृति से भरे हुए स्वप्नों के रंगीले बादल उठ रहे हैं।

संध्या समय आकाश में सुनहलापन होता है। धीरे-धीरे सघन अन्धकार घिरने लगता है। वातावरण शान्त होता है तथा संध्या और आकाश का मिलन होता है। कवियित्री कहती है कि मेरी इच्छाओं का स्वर्णिम प्रकाश सर्वत्र बिखरा हुआ है। मेरे दुःख का अन्धकार घिर रहा है। मेरी आँसू से भरी हँसती हुई दृष्टि में ही संध्या तथा आकाश का शान्त मिलन दिखाई देता है। (संध्या समय एक ओर तो प्रकाश की किरणें हैं, दूसरी ओर अन्धकार घिर रहा है। रात होने पर ओस गिरने लगती है। इसी प्रकार कवियित्री के नेत्रों में एक ओर हँसी की प्रकाश-किरण है तथा दूसरी ओर आंसू की बूँदें हैं।)

लता भर ... चल क्षण।

शब्दार्थ—कैरव=कुमुद, सफेद कमल—यहाँ कुमुद अर्थ है। मिस=बहाने से। चल क्षण=चंचल पल।

भावार्थ—संध्या के समय वायु नदी के तीरों से सुगन्धि भर कर लाती है जल में कुमुदिनी खिलने लगती है। कवियित्री कहती है कि मेरी साँसों का पवन इस संसार से स्मृतियों की सुगन्धि भर कर ला रहा है। संध्या के इस दृश्य को देखकर स्मृतियाँ उद्‌बुद्ध हो रही हैं। इस संसार रूपी नदी के जीवन तथा मृत्यु रूपी किनार सुरभित हैं। मेरे रोमों में कुमुदिनी के वन खिल जाते हैं।

आज रात के आदि तथा दिवस के अन्त का मिलन हो रहा है। रात्रि तथा दिवस के परिणय से आदि और अन्त अधिक रमणीक हो उठे हैं। आज आँसू के बहाने ओस की बूदें गिर रही हैं। मेरी स्मृति के चंचल क्षण ने ध्रुव नक्षत्र का रूप ले लिया है।

इच्छाओं ... पाहुन।

शब्दार्थ—शर=तीर। द्रुत=तेज। झीने=पतले। सुमन=फूल। सुख-दुख विहग=सुख-दुःख रूपी पक्षी। अग जग=जड़ और चेतन। पाहुन=अतिथि।

भावार्थ—जब किरण रूपी इच्छाओं के शीघ्र गामी तथा पतले वाण इस अनन्त आकाश में चुभते हैं तो वे नक्षत्र रूपी फूलों के रूप में प्रकट हो जाते

हैं। संध्या समय प्रकाश की किरणें आकाश में विलीन हो जाती हैं और नक्षत्र उदित हो जाते हैं। इधर इच्छाएँ मन में आशा के फूल खिलाती हैं।

सुख दुःख रूपी पक्षी घर लौट चले हैं। मेरा सुख दुःख मय जीवन समाप्त होने वाला है। मेरा संसार जो जड़ तथा चेतन दोनों प्रकार की वस्तुओं से रहित हो रहा है। यह संसार का मार्ग विलीन हो रहा है। मेरे जीवन का अन्त निकट है। अतः हे अतिथि ! अब तो तुम मेरी पलकों में उतर आओ, मेरे नयनों में समा जाओ।

इस कविता में कवियित्री के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण तथा नवीन उद्-भावनाओं के दर्शन होते हैं।)

५०

[इस कविता में भी कवियित्री ने संध्या का मानवीकरण किया है। नवीन कोमल कल्पनाएँ तथा रहस्यात्मक आभा अत्यन्त रमणीक है।]

रागभीनी .... सजीले।

शब्दार्थ—रागभीनी=प्रेम अथवा लालिमा से भरी हुई। मदिर नव=मस्त कर देने वाली नवीन शक्ति। मधुर रव=मीठी आवाज। नभ के फूल=तारे। आँसू=ओस।

भावार्थ—हे सजनी ! तू प्रेम भरी है; पवन रूपी तेरे निश्वास भी रंगीले हैं उनमें भी सुगन्धि का आकर्षण भरा हुआ है। हे सजनी ! तेरे नयनों में ऐसी क्या मस्ती भरी हुई है, जिसको देखकर पक्षियों की अपने नीड़ की स्मृति मीठे संगीत के रूप में बह निकली है। जिसे देखकर गाते हुए तेरी गुलाबी चितवन में, लालिमामय वातारण में, इठलाते हुए हठीले पक्षी घरों की ओर चले जा रहे हैं।

किस पाताल की नगरी को छोड़कर प्रेम में वेसुध तथा नयनों में मधुर लजीले अपने सपने भरे रजनी आकाश में तारे जगा देती है और उन्हें ओस के आँसुओं से और भी आकर्षक बना देती है।

आज इन .... अधर गीले ?

शब्दार्थ—तन्द्रिल=अलसाए हुए। असित=काली। अलकें सुनहली=प्रकाश की सुनहली किरणें। कुन्तल=केश। तिमिर-लहरी=अंधकार की

लहर । मृदुतरी = कोमल नाव । छायालोक = कल्पना लोक । अंक संसृति = हृदय का संसार ।

भावार्थ—आज इन मदहोश कर देने वाले क्षणों में प्रकाश की सुनहली किरणें श्यामली रजनी के केशों में उलझ रही हैं। (प्रकाश की किरणों का रात्रि के अन्धकार से मिलन हो रहा है।) हे सजनी ! तेरे चूनरी के रंग नीलम की रज से भरे हुए लाल और पीले हैं। (सन्ध्या समय पूर्व दिशा की ओर अन्धकार होता है, यही, नीलम की धूल है पश्चिम दिशा में लालिमा भी होती है तथा कहीं-कहीं पीतिमा भी। इसीलिए कवियित्री ने रजनी की चुँदरी को नीलम की रज से भरा हुआ, लाल तथा पीली कहा है।)

हे सन्ध्या ! रेखा के समान अन्धकार की एक पतली सी लहर तेरे चरणों को छू कर असीम तथा गम्भीर हो उठी है। (पहले पूर्व दिशा की ओर अन्धकार की रेखा दिखाई देती है। वही धीरे-धीरे सघन होकर सारी सृष्टि को अपने अङ्क में डुबा लेती है।) तेरे गीत बादलों की कोमल नैया लेकर उस पार जा रहे हैं।

किस लोक की स्मृति ने तेरे हृदय में प्रिय के पद चिन्हों का रङ्गीन संसार अङ्कित कर दिया है। प्रिय के स्मरण के कारण ही तुझ में सर्वत्र प्रिय के चरण चिन्ह लालिमा आदि के रूप में अङ्कित होगए हैं तेरी सिहरती हुई पलकें हँसते हुए ओठों को भी गीला कर देती हैं। (सन्ध्या में एक व्यापक एवं गम्भीर करुण-प्रभाव होता है। यहाँ उसी की ओर संकेत है।)

५१

शून्य मन्दिर भिखारी !

शब्दार्थ—शूल = विपत्तियाँ । क्षार = खारे । करुणा-स्नात = करुणा में नहाया हुआ । सरव = सशब्द । अगम = पहुँच से परे ।

भावार्थ—हे प्रिय ! मैं आज सूने मन्दिर में तुम्हारी मूर्ति बन जाऊँगी। और तुम्हारी इस मूर्ति की पूजा कैसी होगी। आज करुणा में नहाकर पवित्र बना हुआ दुःख ही इसका पुजारी है। और दुःख रूपी पुजारी काँटों से पूजा करेगा और खारे आँसुओं का अर्घ्य देगा।

मूर्ति के समक्ष नृत्य होता है तथा नूपुरों की ध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। कवियित्री कहती है कि नूपुरों के मूक स्पर्श से ऐसा सङ्गीत उत्पन्न होगा जो इस सूने विश्व में गूँज उठेगा। और यह अगम्य आकाश भी नृत्य की कम्पनों की शिक्षा माँगने के लिए आएगा। सारे आकाश में भी नृत्य के कंपन फैल जाएँगे। (यहाँ नूपुर का अर्थ भाव से हो सकता है।) अभिप्रेत अर्थ यह है कि तुम्हारी मूर्ति की पूजा का सङ्गीत सारे संसार में तथा आकाश में गूँज उठेगा।

लोल तारक **तुम्हारी।**

शब्दार्थ—लोल तारक=चंचल पुतली। चल=चंचल। साध=इच्छा।

भावार्थ—आराधक स्थिर होकर भगवान का ध्यान करता है। कवियित्री आपको प्रियतम की प्रतिमा मानती है। यह प्रतिमा कैसी है? कवियित्री कहती है कि मेर केश भी स्थिर हैं, मेरे शान्त रोमों में मेरी सारी चंचलता अपने आप समा गई है।

प्रेम की मस्ती की लालिमा भी विलीन होगई है। अब हृदय में कोई इच्छा भी नहीं रही है। मेरी सूनी दृष्टि में तुम्हारी नीरव कहानी वास करेगी। मेरे सूने नयन ही तुम्हारे प्रेम की कहानी को चुपचाप प्रकट किया करेंगे।

महादेवी अपने आपको प्रियतम में मिला कर अपना व्यक्तित्व नष्ट नहीं करना चाहती। किन्तु प्रेम में अधिक से अधिक सामीप्य की कामना रहती है। महादेवी अपने आपको अपने प्रियतम की प्रतिमा के रूप में देखती है। यहाँ प्रिय से तादात्म्य भी है, और अपने प्रथक् व्यक्तित्व की सत्ता भी है।

५२

[महादेवी को अपने आँसू ओर दुःख बहुत प्यारे हैं। स्वप्न में उनका अज्ञात प्रियतम उनसे आँसू माँगने के लिए आता है। इस स्वप्न का ही,यहाँ वर्णन है।

अश्रु **पुलकित।**

शब्दार्थ—दिव=दिन। सुरचाप=इन्द्र धनुष। रश्मि=किरण। निस्पन्द =शान्त।

भावार्थ—जब मेरा प्रिय स्वप्न के समान हँसता हुआ निन्द्रा में मेरे पास आँसू माँगने के लिए आया, तब मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो निद्रा की उस शून्यता में दिन की हँसी ने इन्द्रधनुष का निर्माण कर दिया, वह शून्य भी अत्यन्त आकर्षक हो गया। और जिस प्रकार प्रभात में किरणों के फूट निकलने पर शान्त अन्धकार भी पुलकित एवं तरङ्गित हो उठता है, उसी प्रकार उस शान्त अवस्था में भी मेरे रोम पुलकित हो उठे।

अनुसरण ... सुधारस।

शब्दार्थ—अमा=अमावस्या।

भावार्थ—स्वप्न में प्रियतम का मेरे पास आना ऐसा ही था जैसा कि अमावस्या का पीछा करती हुई चाँदनी आ रही हो। (अमावस्या में घना अन्धकार होता है। उसी प्रकार मेरे जीवन में भी निराशा का अन्धकार ही था। किन्तु अचानक ही स्वप्न में प्रियतम का मिलन हुआ। (जब मेरे मोम जैसे हृदय में विरह-वेदना की चिङ्गारी बस गई तो मानो संसार ने मृत्यु की अंजलि में जीवन का अमृत भर दिया हो। (मोम आग से पिघल जाता है। वेदना की चिंगारी मोम से हृदय को गला देगी, उसका नाश कर देगी। किन्तु कवियित्री के लिए यह विरह-वेदना ही जीवन है। और इस विरह वेदना में मरण है। इसीलिए यह कहा गया है कि संसार ने मृत्यु की अंजलि में—विरह-वेदना में—जीवन का अमृत भर दिया हो।)

माँगते पतझर ... विकास आया!

शब्दार्थ—हिम-विन्दु=ओस की बूँदें। मधुमास=वसन्त का महीना। जलद=बादल। सीकर=बूँदें।

भावार्थ—कवियित्री कहती है कि स्वप्न में प्रियतम का मेरे पास आना ऐसा ही है जैसे कि वसन्त पतझर से ओस की बूँदें माँगने के लिए आए। पतझर की दशा कैसी है? पतझर में कोमल फूल अमर सुगन्धि लुटाकर हमेशा के लिए झर जाते हैं। पानी की बूँदें सूर्य की किरणों से सूख जाती हैं तथा बादल का रूप ग्रहण कर लेती हैं। पतझर नाश का प्रतीक है किन्तु इस नाश में ही विकास भरा है। इसलिए स्वप्न में प्रिय का मिलन ऐसा ही है जैसे कि अनन्त विकास नाश को अपने हृदय से लगाने के लिए आए। प्रियतम में अनन्त विकास है। कवियित्री का जीवन क्षणभंगुर है।

प्रियतम का अनन्त विकास कवियित्री की क्षणभंगुरता को अपने हृदय से लगाने के लिए आया।

५३

क्यों वह ... मनुहार नहीं !

शब्दार्थ—तिमिर-केश=अन्धकार रूपी केश। तारक-पारिजात=तारे रूपी कमल। अवगुण्ठन=पर्दा। अशेष=सम्पूर्ण। सीमन्त=स्त्रियों की माँग। मनुहार=विनय।

भावार्थ—प्रथम छन्द में कवियित्री ने अपना वर्णन रात्रि के मानवीकरण के रूप में किया हैं।

कवियित्री प्रश्न करती है कि इतने शृंगार करने पर भी, इतनी प्रार्थना करने पर भी, मेरा वह प्रिय इस पार क्यों नहीं आता ? मुझ दर्शन क्यों नहीं देता ?

मैंने चन्द्रमा के दर्पण में देख-देखकर अपने अन्धकार रूपी केशों को सँवारा है। उनसे तारे रूपी कमल गूँथे हैं। मैंने चन्द्रमा की संपूर्ण किरणों का वस्त्र पहना है। मेरा यह नवीन शृङ्गार मेरे प्रिय को क्यों नहीं रिझा पाया ?

मैंने हँसी से अपने फीके ओठों को लाल कर लिया है। गति के जावक (महावर) से मैंने अपने चरणों को लाल कर लिया है। मैंने अपनी आँसू भरी पलकों को स्वपनों से रंजित किया है और अपनी माँग में आँसुओं का हार सजाया है। और इस प्रकार शृङ्गार करके मैं क्या युग-युग से स्पनन्दन के बहाने प्रिय की विनय नहीं कर रही !

मैं आज ... अभिसार नहीं ?

शब्दार्थ—सिहरा-सा=पुलकित। दिगन्त=दिशा। पाटल दल=गुलाब के फूल की पँखुरी। आलोक-यान=प्रकाश का रथ। निमिश=क्षण। पाथेय=मार्ग का खर्चा। अभिसार=मिलन।

भावार्थ—मैंने आज चातक को चुप कर दिया है, कोयल को सुला दिया है। काँटों भरी मौलश्री तथा हरसिङ्गार के वृक्ष भी बिल्कुल नीरव हैं। पवन

का बहना बन्द हो गया है और शान्त संसार पर स्मृतियों का भार नहीं है। सारा संसार स्मृतियों को भूलकर निन्द्रा में बेसुध है।

पुलकित सी दिशाएँ भी रुँधी हुई हैं। कोमल बादल के टुकड़े सफेद गुलाब के फूल के पत्तों के समान सुशोभित हैं। सूर्य के प्रकाश का रथ क्षितिज के उस पार है। (आलोकयान से अभिप्राय: सफलता से है।) वियोगिनी का प्रिय उस पार है। तभी तो वियोगिनी विरह-वेदना में व्यथित है। निद्रा भी नहीं आई है इसीलिए श्वासों के तार नहीं बुने जा सकते। (सुषुप्तावस्था में व्यक्ति की साँस निरन्तर सम गति से चलती है। वियोगिनी को नींद कहाँ ? वह जागकर ठंडी साँसें भरती है। इसलिए साँसें सम नहीं हैं।)

दिन और रात रूपी पथिक भी थककर लौट गए। क्षण भी वियोगिनी को मना-मनाकर हार गए। अब न तो उसे दिन-रात का भान होता है और न ही समय की गति का। कवियित्री कहती है कि मेरे पास तो केवल प्रिय की मधुर स्मृति का ही पाथेय है और विरह का मार्ग अनन्त तथा सूना है। इतना सब होने पर भी कौन यह कहता है कि मेरा अभिसार अभी तक सूना नहीं है। मेरा प्रियतम से मिलन नहीं हुआ। क्योंकि विरह के जिस मार्ग पर में निकली हूँ उसका तो कोई अन्त ही नहीं है।

५४

क्यों **स्पनन्दन !**

शब्दार्थ—पुलिन=किनारा। रज भरे=धूल भरे। जगबाल=बादल-जगत का अर्थ वायु होता है। वायु बादल को खिलाती है इसलिए बादल को वायु का बाल अथवा जगबाल कहा गया है।

भावार्थ—मुझे बन्धन क्यों न प्रिय हो ?

मेघ भरी रात्रि में जब बिजली चमकती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो अन्धकार रूपी सागर का बिजली का प्रकाश रूपी किनारा बन गया है। धूल भरे बादल के कारण बिजली भी मलिन सी दिखाई देती है; उसकी काँति भी धूमिल हो जाती है। प्रकृति के ऐसे दृश्य को देखकर प्रिय के रूप का स्मरण हो

आता है। कवियित्री कहती है कि ऐसी अवस्था में मेरा प्रिय स्वयं ही मेरी स्मृति के फलक (चित्रपटी) पर अपना चित्र बना रहा है।

हर्ष की चाँदनी मेरे दुःख भरे जीवन की अमावस्या से मिलकर उस का अभिषेक करती है, उसे आदर प्रदान करती है। (पहले भी कवियित्री यह कह चुकी है कि प्रिप का स्वप्न में आना ऐसा ही है जैसा कि चाँदनी का अमावस्या से मिलने के लिए आना।) आज जागरण मृत्यु और जीवन के दो किनारों को एक कर रहा है। (पहले भी कवियित्री यह कह चुकी है कि मेरे प्रिय ने मुझे मृत्यु की अंजलि में भरकर जीवन का अमृत दिया है। कवियित्री के जीवन में मरण तथा जीवन दोनों एक साथ विद्यमान हैं। उसको अपने व्यक्तित्व की चेतना यह जीवन का चिह्न है। किन्तु उसमें वेदना की ज्वाला भी है जो मृत्यु है।) आगे कवियित्री कहती है कि मेरा कम्पन ही मेरे प्रिय को मेरे प्राणों का सन्देश देने वाला प्रिय का दूत बन गया है।

सजनि **पूत अंजन !**

शब्दार्थ—स्वर्ण पिंजर=सुनहला पिंजड़ा। प्रलय का वात=प्रलय का तूफान ! पुंजीभूत=एकत्र, सघन । तूल=रुई । निधि=खजाना। पूत अंजन=पवित्र काजल ।

भावार्थ—हे सखि ! मैंने अपने शरीर के सुनहले पिंजरे में वेदना रूपी प्रलय का तूफान पाल लिया है। और आज मैंने अन्धकार को सघन कर उसे प्रकाश बना दिया है। अब मुझे निराशा के अन्धकार में ही जीवन की आशा का आलोक दिखाई देने लगा है। मेरा हृदय रुई के समान है। किन्तु उसमें भरी वेदना की ज्वाला उसे जला नहीं रही है। कारण, ज्वाला अब मेरे लिए चंदन के समान शीतल हो गई है।

यह स्वाभाविक है कि जब मनुष्य जीवन में दुःख, निराशा और वेदना का ही एकमात्र अनुभव करता है तो उसे दुःख में सुख, निराशा में आशा और वेदना में ही शीतलता का अनुभव होने लगता है। एक उर्दू के कवि का कथन है—

रंज से खूगर हुआ इन्सां तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझपै कि आसां हो गईं॥

आगे कवियित्री कहती है कि आज मुझे विस्मृति रूपी मार्ग में उनके चरण-चिह्न मिले हैं जो मेरे लिए खजाने के समान हैं। मैं उनके चरण चिह्नों को भूल चुकी थी। किन्तु आज मुझे फिर से उनका स्मरण हो रहा है। आज की वेदना मेरे असफल तथा बीते हुए स्वप्नों को गिन-गिनकर लौटा रही है। आज की वेदना में मुझे अपनी उन बीती कल्पनाओं तथा आशाओं का स्मरण हो रहा है जो कभी भी पूरी नहीं हुईं। मैं सदैव से अपनी प्रिय की प्रतीक्षा करती आ रही हूँ। मेरे नेत्रों में प्रिय की प्रतीक्षा ही अंजन बनकर सुशोभित हो रही है।

आज .... दिन।

शब्दार्थ—खोज-खग=खोज रूपी पक्षी। विकल=व्याकुल। आकाश-चारी=आकाश में संचरण करने वाली। तिमिरहारी=अन्धकार को नष्ट करने वाला प्रकाश। निर्बन्ध=बन्दनातीत। रागमय=प्रेममय।

भावार्थ—मैं हमेशा से प्रिय की खोज करती आ रही हूँ। किन्तु आज मेरा खोज रूपी पक्षी अपने घोंसले में बसने के लिए जा रहा है। अर्थात् मैंने प्रिय का अन्वेषण समाप्त कर दिया है। कारण, मुझे अपने विरह में ही प्रिय के दर्शन होने लगे हैं। इसलिए तो मेरा सुख आँसू से यह कहता है कि तू ही मेरा असीम प्रेम है। और तब बीते हुए युगों के मेरे ठण्डे श्वास ही स्पनन्दन बन जाते हैं।

इस कविता की प्रथम पंक्ति का सीधा सम्बन्ध इन पंक्तियों से है जिनकी व्याख्या अब की जा रही है।

वीणा के तार वीणा से बँधे होते हैं, किन्तु उनकी झङ्कार वीणा तक ही सीमित न रह समस्त आकाश में व्याप्त हो जाती है। तार बन्दी हैं किन्तु उनकी झङ्कार स्वच्छन्द है। मिट्टी के बने हुए एक क्षुद्र दीपक के साथ ही प्रकाश बँधा है किन्तु दीपक जहाँ भी रखा जाएगा उसके चारों ओर का वातावरण प्रकाशित हो उठेगा। प्रकाश दीपक से बँधा है पर उसका प्रभाव निर्बन्ध है। कवियित्री कहती है कि इसी प्रकार मैं बन्धन में हूँ। मैं अपने बन्धनों को गिनकर भी निर्बन्ध हूँ, मुक्त प्रियतम को अपने में बाँधे हुए हूँ।

(इसीलिए तो उसे बन्धन प्रिय हैं। यदि बन्धन न हों तो उसे अपने पृथक अस्तित्व में ही प्रिय के दर्शन नहीं हो सकते।)

नित्य ही स्वर्णिम संध्या के चरणों से लिपटा हुआ अन्धेरा आता है। पहले संध्या होती है और फिर अन्धकार छा जाता है। मेरा मिलन विरह रूपी पुलकित पक्षी उड़ता हुआ आ रहा है। मेरा विरह ही मेरे मिलन में परिवर्तित होता जा रहा है। पता नहीं उस पार अंधकार है अथवा प्रेममय दिवस है। पता नहीं इस जीवन के पश्चात् निराशा मिलेगी या प्रेम ?

इस कविता में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि प्रथम पंक्ति का नीचे की पंक्तियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध लक्षित नहीं होता। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि चाँदनी का आग से अभिषेक आदि करना केवल कवियित्री के बन्धन के कारण ही सम्भव हो सका है।

५५

जाने **सँवार।**

शब्दार्थ—मधु-बयार=वसन्त की वायु। रंजित कर दे=रङ्ग दे। अरुण राग=लालिमा। मण्डन=शृंगार। रजनी गन्धा=रात की रानी। पराग=सुगन्धि। यूथी=जूही। मीलित=मिली हुई, संपुटित। कवरी=केश।

भावार्थ—वसन्त के पवन का उद्दीपक प्रभाव देखकर कवियित्री कहती है कि पता नहीं वसन्त का यह पवन किस बीते हुए जीवन की स्मृतियों को आँचल में भरकर ला रहा है। आगे कवियित्री सखि से कहती है कि तू नवीन अशोक से लालिमा लेकर मेरे इन इन अलसाए चरणों को रङ्ग दे। मेरे शृंगार के लिए तू रात की रानी की सुगन्धि ला दे। हे सखि ! जूही की सम्पुटित कलियों से तू मेरे केशों को सँवार दे।

पाटल **मधु-बयार !**

शब्दार्थ—पाटल=गुलाब। हिम=बर्फ। दुकूल=चूनर। अलि गुंजन=भँवरों की गुंजार। वकुल=मौलश्री। रज=धूल। विरज=धूल हीन, कोमल। चर्चित=युक्त। सुमन-लाज=सुमन रूपी लज्जा।

भावार्थ—हे सखि ! तू मेरी बर्फ के समान शुभ्र चूनर को गुलाब के सुगन्धित रंगों से रंग दे । मेरी जिह्वा में तू भँवरों के गुंजार से भरे मौलश्री के फूल गूँथ दे । मेरी आवाज में भँवरों की गुंजार का माधुर्य और फूलों की सुगन्धि भर दे । हे सखि ! तू रात्रि से अंजन माँगकर मेरे नयनों को आँज दे ।

आज आकाश अपने तारे रूपी नेत्रों से आँसू की बूँद सींच-सींच कर धूल को भी कोमल बना रहा है । हरसिंगार के वृक्ष केशर से युक्त फूल रूपी लाज को मार्ग में बिखेर रहे हैं । पुलकित आम के वृक्षों पर पागल कोयल मुझे पुकार उठती है । पता नहीं आज कैसी मादक वायु बह रही है ।

५६

प्रिय-पथ खारे ही हैं !

शब्दार्थ—प्रिय-पथ=प्रिय के प्रेम का मार्ग । शूल=विपत्तियाँ । अलि=सखि । हीरक=हीरा । चल=चंचल । तम-तमाल=अंधकार रूपी तमाल वृक्ष ।

भावार्थ—हे सखि ! प्रिय के प्रेम की राह की जो विपत्तियाँ हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । मेरे प्रियतम की स्मृति हीरे के समान शुभ्र तथा मूल्यवान है । मेरा जीवन उनके प्रेम से सोना बन जाएगा । और उनके विरह की अग्नि में तप कर यह और भी शुद्ध हो जाएगा । मेरे लिए तो अंगारे ही चंचल ज्वाला के देश हैं । मैं नित्य प्रति जलाने वाले विरह के देश में निवास करती हूँ ।

अब प्रभात का वर्णन है ।

अन्धकार रूपी वृक्ष ने तारे रूपी फूल गिराकर दिन रूपी पलकें खोल दी हैं । अंधेरा दूर हो गया है, तारे छिप गए हैं और दिन का आरम्भ हो रहा है । मैंने तभी सब से पहले दुःख में सुख रूपी मिश्री घोली । उस प्रभात वेला में मुझे एक अनुपम सुख का अनुभव हुआ । किन्तु जीवन भर की विरह वेदना की अपेक्षा यह सुख बहुत अल्प था । मेरे पास प्रिय को देने के लिए खारे आँसुओं के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । मेरे प्रियतम एक क्षण भर के लिए ठहरें, मैं उन्हें यही अर्पण करती हूँ ।

ओढ़े हारे ही हैं ?

शब्दार्थ— रजकरण=धूल के कण । मुकुल=फूल ।

भावार्थ—इन पंक्तियों में कवियित्री अपने व्यक्तित्व की विराटता का परिचय देती है । रात का उजाला उसकी छाया ही है । उसके चरण को छूकर ही धूल के कण फूल बने हैं—

रात मेरी छाया को ओढ़कर ही तो प्रकाश देती है । रात की चाँदनी मेरी छाया है । और धूल के कण मेरे कोमल चरणों को छूकर ही फूल बन खिल उठते हैं। सदैव से चमकते हुए तारे ही मेरा सनातन इतिहास बताते हैं । जिस प्रकार तारे सनातन हैं, उसी प्रकार मेरा व्यक्तित्व भी सनातन है ।

मेरी आकुलता ही तल्लीन राधिका बन गई है । जिस प्रकार राधिका कृष्ण के स्मरण में स्वयं को भूल जाती थी, उसी प्रकार मैं भी अपनी व्याकुलता में प्रियतम में लीन हो गई हूं । आज विरह ही मेरा आराध्य है । विरह तथा मुझ में अभेद है । इसलिए आज मुझ में तथा मेरे आराध्य में द्वैत नहीं है, दोनों के बीच कोई बाधा भी नहीं है । मेरा सब कुछ खो देना ही मेरे लिए सब कुछ की प्राप्ति थी । मेरे प्रियतम जीत कर भी मुझ से हार गए। उन्होंने मुझे दर्शन नहीं दिए, मुझ से अलग रहे इसीलिए वे जीते थे । किन्तु आज उनके विरह से ही मेरा तथा उनका अभेद स्थापित हो गया है । इसीलिए वे जीतकर हार गए हैं ।

५७

मेरी है रात !

शब्दार्थ—झीने=पतले । सितांचल=सफेद आंचल, चाँदनी । विझर-झर=तेजी के साथ झरकर ।

भावार्थ— हे सखि ! मेरी बात तो पहेली के समान है । मेरा जीवन रहस्यमय है । (आगे इस कविता में हमें महादेवी तथा प्रकृति के बीच तादात्म्य लक्षित होता है ।)

चाँदनी रूपी झीने सफेद आँचल से मोती बिखर कर ओस की बूँदें बन गई हैं, उसी प्रकार मेरे नेत्रों में स्वप्नों की झड़ी आँसुओं के रूप में फूट निकली

है। इसीलिए हे सखि ! मैं उतनी ही करुण हूँ जितनी कि यह रात करुण है।

मुस्कराकर बरसात !

शब्दार्थ—राग मधुमय=रसीली लालिमा। तिमिर विष=अन्धकार रूपी विष। जर्जर=दुःखों से दग्ध। तूल=रुई।

भावार्थ—प्रभात अंधकार रूपी विष को पीकर चारों ओर रसीली लालिमा बिखेर देता है। मैं भी नित्य प्रति वेदना का क्षार पीती हूँ किन्तु दुःख दग्ध मनुष्यों को प्रेम का रस दिया करती हूँ। इसलिए हे सखि ! मैं भी उतनी ही मधुर हूँ जितना रमणीय यह प्रभात है।

वर्षा ऋतु के आने पर गर्मी से जले हुए संसार के हृदय पर रुई के समान सफेद बादल छा गए और उन्होंने संसार को शीतल कर दिया। और इधर दुःख की अग्नि से कोमल होकर मेरा हृदय संसार भर की करुणा से उमड़ आता है। इसलिए हे सखि ! मैं उतनी ही सजल हूं जितनी सजल यह बरसात है।

५८

मेरा शेष लेते !

शब्दार्थ—सेतु=पुल। वारीश=सागर। हलाहल=विष।

भावार्थ—कवियित्री की यह अभिलाषा है कि एक बार मेरा प्रिय मेरे सजल और अरुण मुख को देख लेता।

तुमने विरह रूपी सागर के जल को रोकने के लिए विपत्तिरूपी शूलों का पुल बाँधा है; तुमने मुझे विरह दिया है और साथ में विपत्तियाँ भी दी हैं। मेरी विपत्तियाँ मेरे विरह को मिटने नहीं देतीं। और तुमने फूल जैसी कोमल तथा आकर्षक पलकें बनाईं किन्तु उनमें वेदना का विष भर दिया ! तुमने मुझे दुःखमय सुख दिए। तुम्हारे वियोग में जीवन के सारे सुख मेरे लिए दुःख के समान ही हैं। तुमने मुझे दुःख भरा सुख भी दिया। तुम्हारे वियोग के दुःख में ही मेरे जीवन का सारा सुख भरा हुआ है। हे प्रिय ! यदि तुम मुझे ज्वाला-रूपी जलन दंश दे देते तो तुमसे कौन यह पूछ सकता था कि तुमने ऐसा क्यों किया।

मैंने नीलम के समान अपने नेत्र रूपी तुला के ऊपर आँसू रूपी मोतियों से अपने प्रेम का मूल्य आँका । मैंने प्रेम किया और फिर आँसू रूपी मोतियों से मुझे उसकी कीमत चुकानी पड़ी । पता नहीं कब से मेरे भोले प्राण मृत्यु के साथ यह व्यापार कर रहे हैं, मेरे प्राण तुम्हारी वियोग वेदना के साथ खेल रहे हैं । यदि तुम मुझ से मेरी सम्पूर्ण ममता माँग लेते तो भ्रम में पड़ा हुआ सारा संसार तथा अपनी वेदना के क्षण वरदान स्वरूप ही हो जाते । ममता के कारण ही मैं आज सारे संसार के लिए करुणा का सागर लिए बैठी हूँ ।

पद चले रेख लेते ?

शब्दार्थ—स्पन्दन=कम्पन । धूमिल = धुँधला । अलसित=अलसाए हुए । विजड़ित=उखड़े हुए, थके हुए । हाला=शराब । सुरंग अवगुण्ठन= रंगीन घूँघट ।

भावार्थ—मेरे चरण, मेरा जीव, मेरी पलकें तथा मेरे कम्पन सभी अपने आराध्यदेव की ओर बढ़े जा रहे हैं । किन्तु जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ती जाती हूँ, वैसे-वैसे मेरा अस्पष्ट लक्ष्य दूर होता जाता है—जैसे आगे बढ़ने पर क्षितिज दूर होता जाता है । मेरे अंग-अंग अलसा रहे हैं, मेरे प्राण थककर चूर होगए हैं । ऐसी अवस्था में भी यदि तुम स्वयं हँस कर मुझे पराजित कर देते, तो उसमें भी मैं अपने जीवन की सफलता ही समझती । किन्तु तुमने मुझे पराजय भी नहीं दी । इसीलिए तो मैं अपनी अमर साध लिए तुम्हें पाने को आगे बढ़ रही हूँ ।

पता नहीं मेरे आँसुओं में कौन सी शराब घुल गई है जो सारा संसार इन्हें पी मस्त होकर झूम रहा है, तथा नक्षत्र माला आकाश में घूम रही है । मेरी केवल यही एक इच्छा है कि जिस प्रकार अन्धकार संध्या के सुनहले अवगुण्ठन को हटाकर ओस की बूँदें गिन लेता है उसी प्रकार तुम भी मेरा रंगीन घूँघट उठाकर मेरी आँसुओं की रेखा देख लेते ।

प्रथम दो पंक्तियों में विरह का व्यापक प्रभाव दर्शनीय है ।

शिथिल सन्देश देते ।

शब्दार्थ—शिथिल=थके हुए । सुभग=सुन्दर । अचल उर=शान्त हृदय वाले ।

भावार्थ—यदि कभी तुम मेरे थके हुए चरणों के नूपुरों की करुण ध्वनि सुन लेते तो वह यह ध्वनि तुम्हें मेरे विरह का इतिहास सुना देती। ए शान्त हृदय वाले! तू तनिक चंचल पग धरता हुआ मेरे पास आजा। मुझे देखकर तुम मुक्ति वार देते और अपने निर्वाण के सन्देश को भी भूल जाते।

५९

विरह **अनुरागिनी सी!**

शब्दार्थ—मधु की यामिनी=वसन्त की रात्रि। आह्वान=आमंत्रण। अनुगामिनी=पीछे चलने वाली। स्मित=मुस्कराहट। क्षार=खारा। अनुरागिनी=प्रेमिका।

भावार्थ—हे सखि! मेरी विरह की घड़ियाँ वसन्त की सुन्दर रजनी के समान हो गई हैं।

वसन्त की रजनी मेघ शून्य होती है; इसीलिए उसके नक्षत्र अत्यंत समीप दिखाई देते हैं। रात्रि की शान्ति में निमन्त्रण का भाव झलकता है। वह निःसीम होती है। कवियित्री कहती है कि वसन्त की रात के दूर के नक्षत्र मेरी पुतलियों के समान आकर्षक तथा अत्यन्त समीप दिखाई देते हैं। मेरे हृदय के सूनेपन में भी प्रियतम के आमन्त्रण का स्वर सुनाई देता है। आज रात की निःसीमता मेरे इस नन्हें प्राण के पीछे चल रही है। मुझे अपने भीतर ही असीमता का अनुभव हो रहा है।

मेरा एक-एक कम्पन मेरे युग-युग के दीर्घ जीवन की करुण कथा सुना रहा है। नेत्रों का खारा पानी भी मेरी हँसी से अधिक रमणीय हो गया है। इन आँसुओं में ही अब अधिक आनन्द की अनुभूति होने लगी है। मेरी हरेक शान्त साँस नए स्वप्न से प्रेम करती है। हरेक साँस में मैं नवीन स्वप्न देखती हूँ।

सजनि **स्वामिनी सी।**

शब्दार्थ—अन्तर्हित हुआ=छिप गया। साँध्य-नभ=संध्या का आकाश। तिमिर की दीपावली=अँधेरे में चमकने वाले तारे।

७

भावार्थ—हे सजनी ! आज में धुँधला और असफल कल विलीन हो गया है। आज मुझे विरह में ही मिलन की अनुभूति हो रही है। इसलिये बीता हुआ असफल युग आज में मिट गया है। और जब मुझे विरह में ही मिलन की अनुभूति हो रही है तो फिर स्मृति कैसी ? इसलिये स्मृति निराश पुजारिनी के समान मेरी राह देख रही है। अब मैं कभी भी स्मृति नहीं करूँगी। मिलन के क्षणों में स्मृति कैसी !

अब कवियित्री को प्रकृति में अपने ही भावों की परछाईं दिखाई देती है। विरह का व्यापक प्रभाव है।

संध्या के आकाश में मेरे ही रंगीले भाव बिखर कर उसे रंगीन तथा आकर्षक बना देते हैं। पुलक से गीले हुए मेरे रोम ही रात के नक्षत्र हैं। मैं बन्दिनी होकर भी अपने बन्धनों की स्वामिनी हो गई हूँ क्योंकि अब विरह में ही मेरा मिलन है।

(विरह के इस मिलन में दो विरोधी प्रतीत होने वाली बातें दिखाई देती हैं। प्रथम यह कि प्रिया और प्रिय का मिलन हो गया है। द्वितीय, इस मिलन में भी प्रिया का अस्तित्व प्रिय के व्यक्तित्व में मिटा नहीं है वरन् पृथक बना हुआ है। व्यक्तित्व के पृथक होने के कारण प्रिया बन्दिनी भी है और प्रिय के मिलन के कारण अपने बन्धनों की स्वामिनी भी।)

६०

शलभ ... **मन्दिर हूँ।**

शब्दार्थ—शलभ=पतिङ्गा। शापमय वर=कवियित्री का जीवन प्रियतम का वरदान है किन्तु उसमें वेदना का शाप भी है इसलिए उसने अपने आप को शापमय वर कहा है। अक्षय कोष=अनन्त खजाना। रंगशाला=क्रीड़ास्थल। साध=इच्छा। आगार=खजाना।

भावार्थ—हे शलभ ! मेरा जीवन एक शापमय वरदान है। मेरे प्रियतम ने मुझे जीवन का वरदान दिया है किन्तु उसमें वेदना का शाप भी है। मैं किसी का जलता हुआ निष्ठुर दीपक हूँ। (दीपक को प्रकाश का वरदान भी मिला है

और ज्वाला का शाप भी। इसलिए अपने जीवन को दीपक की समानता देना उचित ही है।)

दीपक की जलती हुई शिखा ही मेरा ताज है। चिंगारियाँ मेरी श्रृंगार करने की माला है। दीपक की ज्वाला मेरा अनन्त खजाना है और अंगारे मेरी क्रीड़ास्थली है। मैं नश्वर हूँ किन्तु फिर भी मुझमें किसी की इच्छा सजीव हो रही है। मेरे प्रियतम की इच्छा मुझमें साकार हुई है। वही मेरा जीवन है।

हे शलभ ! मैं तुझे अपने नेत्रों में रखने के लिए प्रस्तुत हूँ, किन्तु वहाँ जलती हुई पुतलियों में तुझे रहना पड़ेगा। उनके ताप से तू दुःखी होगा। और फिर तुझे प्राणों में भी कैसे रखूँ क्योंकि मेरे प्राण तो अग्नि की समाधि बने हुये हैं। वहाँ रहना भी तेरे लिये अत्यन्त कठिन होगा। तू ही बता कि मैं तुझे कहाँ रखूँ ? मैं तो मृत्यु का मन्दिर हूँ।

हो रहे **शर हूँ।**

शब्दार्थ—दृग=नेत्र। क्षार=खारे। शर=तीर।

भावार्थ—मेरे नेत्रों से आग के कण बरस रहे हैं किन्तु आँसुओं में भीग कर वे खारे और शीतल हो जाते हैं। दुःख से द्रवित होते हुये मेरे हृदय से निकलने वाले श्वास ही दीपक के नीले धूम का रूप ले लेते हैं। यदि मुझमें वेदना की ज्वाला न हो, तो मैं केवल एक मिट्टी का ढेर बन जाऊँ। उसी प्रकार यदि दीपक में लौ न हो तो वह मिट्टी के अतिरिक्त और क्या है।

पता नहीं कौन मुझे स्वप्न में जगाने के लिए आया था। उसने मेरा स्पर्श कर मुझे जगाना चाहा था। उस क्षण के पश्चात् फिर उसके दर्शन नहीं हुए। अब तो मुझे उन उँगलियों के स्पर्श की याद में ही युग बिता देने हैं। मैं प्रियतम से मिलने के लिए बेकरार हूं। किन्तु मेरी यह इच्छा ऐसी ही है जैसे कि रात के हृदय में दिवस के मिलन की इच्छा का वाण हो। किन्तु दिवस होते ही रात मिट जाती है। इसलिए रात और दिन का यह मिलन सम्भव नहीं। उसी प्रकार मेरे और प्रियतम के मिलने का अर्थ होग' मेरे व्यक्तित्व का नाश।

शून्य मेरा **चिर हूं।**

शब्दार्थ—अवसान=अन्त।

भावार्थ—इन पंक्तियों में कवियित्री उक्त बात को पल्लवित करती है।

जिस प्रकार रात्रि का जन्म शून्य में होता है उसी प्रकार मेरा जन्म भी सुनसान था, उसमें कोई हर्ष नहीं था। जिस प्रकार प्रातःकाल में रात्रि का अन्त हो जाता है उसी प्रकार मिलन में मेरा नाश है। जिस प्रकार रात्रि को केवल अन्धकार ही साथी मिला है उसी प्रकार मेरे जीवन का एकमात्र साथी निराशा का अन्धकार ही था। इसलिए मिलन का नाम मत लो, मैं तो विरह में ही अमर हूँ। मिलन में तो मेरा नाश है। और विरह में पृथक् सत्ता।

६१

[इस कविता में कवियित्री ने पावसऋतु के साथ तादात्म्य किया है। कवियित्री वियोग-वेदना से दुःखी है। उसे पावस-ऋतु के मेघ भी दर्द भरे दिखाई देते हैं।]

मैं नीर भरी **पली !**

शब्दार्थ— चिर-निस्पन्द=सनातन तथा अचल। क्रन्दन=रोना, मेघ गर्जन। दीपक=वियोग की ज्वाला, बिजली। निर्झरिणी=आँसू, जल की धारा। स्वास=साँस, वायु। स्वप्न पराग=स्वप्न रूपी सुगन्धि। दुकूल=दुपट्टा, रंगीन बादल। मलय-बयार=शीतलता, मलय-पवन।

भावार्थ—कवियित्री कहती है कि मैं जल से भरी हुई दुःख की बदली हूं। मैंने अपने कम्पन में सनातन तथा अचल प्रियतम को बसा रखा है। जिस प्रकार मेघ गर्जन सुनकर गर्मी से दुःखी संसार हर्षित हो उठता है, उसी प्रकार मेरा गीतों का विलाप सुनकर सारा संसार प्रसन्न होता है। जिस प्रकार मेघों में बिजली के दीपक जलते हैं, उसी प्रकार मेरे नेत्रों में वेदना की ज्वाला जल रही है। जिस प्रकार मेघों से जल की धारा बरसती है, उसी प्रकार मेरे नयनों से सदैव आँसू बहते रहते हैं।

जिस प्रकार वर्षा की धाराओं में संगीत भरा है, उसी प्रकार मेरा जीवन भी प्रेम के संगीत से भरा हुआ है। जिस प्रकार पावस ऋतु में सुगन्धित पवन चलता है, उसी प्रकार मेरी साँसों में भी प्रेम की सुगन्धि है। जिस प्रकार प्रकाश से बादल अनेक वर्णों के हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रकाश के अनेक वर्णों

से मेरा दुकूल सुशोभित है। जिस प्रकार बादलों की छाया में शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन चलता है, उसी प्रकार मेरी छाया में भी अन्य मनुष्यों को शीतलता और सुख प्राप्त होता है।

मैं क्षितिज **आज चली !**

शब्दार्थ—क्षितिज-भृकुटि = क्षितिज रूपी भौं। अविरल = निरन्तर। रज-कण = मिट्टी, क्षुद्र व्यक्ति।

भावार्थ—जिस प्रकार घटा पहले क्षितिज पर धूमिल सी दिखाई देती है और फिर निरन्तर घनी होती जाती है, उसी प्रकार मेरी भृकुटि पर चिन्ता घिर आई और निरन्तर गम्भीर होने लगी। जिस प्रकार घटा धूल के ऊपर जल बरसाती है और फिर उसमें से नवीन अंकुर फूट निकलते हैं, उसी प्रकार मैं क्षुद्र व्यक्तियों के ऊपर अपनी करुणा बरसाती हूँ जिसके द्वारा उनमें नवीन जीवन का संचार होता है।

घटा के आने के समान ही मेरे आने से संसार का मार्ग मलिन नहीं होता और जब मैं यहाँ से जाती हूं तो यहाँ मेरा कोई पद-चिह्न शेष नहीं रह जाता। आकाश में जब घटा आती है तो वह आकाश के मार्ग को मलिन नहीं करती और जब जाती है तो आकाश पर उसका कोई चिह्न शेष नहीं बचता। जिस प्रकार मनुष्य घटा का स्मरण करके हर्ष में भर उठते हैं, उसी प्रकार मेरे आगमन के स्मरण से भी व्यक्तियों में हर्ष जाग उठता है।

जिस प्रकार इस विराट् आकाश के किसी भी कोने पर घटा का अधिकार नहीं होता, उसी प्रकार इस विशाल संसार में किसी वस्तु पर भी मेरा अधिकार नहीं है। जिस प्रकार घटा उमड़ कर आती है और फिर शीघ्र ही विलीन हो जाती है उसी प्रकार मेरा परिचय तथा इतिहास इतना ही है कि कल मेरा जन्म हुआ था और आज मैं मिटी जा रही हूं। (जीवन की क्षण भंगुरता की ओर संकेत है।)

६२

चिर सजग **छोड़ आना !**

शब्दार्थ—हिमगिरि = हिमालय। मौन अलसित = शान्त तथा अलसाया

हुआ। व्योम=आकाश। तिमिर=अन्धकार। विद्यु त शिखा=बिजली की ज्वाला।

भावार्थ—कवियित्री अपने आप से कहती है—'हमेशा सजग रहने वाली तेरी आँखें निद्रा में भर रही हैं। आज तू कितनी व्यस्त और थकी हुई सी दिखाई दे रही है। तू जाग उठ ! तुझे अभी बहुत दूर जाना है।

चाहे शान्त हिमालय का हृदय भी कम्पित हो उठे, चाहे मौन और अलसाया हुआ आकाश प्रलयङ्कर वर्षा करने लगे, चाहे भयङ्कर अन्धकार प्रकाश को पीकर सब दिशाओं में पुंजीभूत हो उठे, चाहे तूफान बिजली की ज्वालाओं को जगाकर घिर आए, चाहे कैसा ही भयङ्कर उत्पात क्यों न हो जाए, तुझे इस नाशवान पथ पर अपने पद-चिन्ह छोड़ देने हैं। अनेक बाधाओं के बीच भी तुझे अपने मार्ग पर बढ़ते जाना है और पीछे आने वालों के लिए निशान छोड़ जाने हैं।

बाँध लेंगे **कारा बनाना।**

शब्दार्थ—मोम के बन्धन सजीले=सुन्दर किन्तु नश्वर बन्धन, संसार का बन्धन। तितलियों के पर रंगीले=आकर्षक इच्छाएँ। क्रन्दन=विलाप, पीड़ा। कारा=कैदखाना।

भावार्थ—क्या तू मोम जैसे क्षणभंगुर किन्तु आकर्षक इस संसार के बंधनों में बँध जाएगी ? क्या तितलियों के रंगीले परों के समान आकर्षक इच्छाएँ तुझे अपने पथ पर आगे बढ़ने से रोक देंगी ? क्या भँवरों की गुंजार सुनकर तू संसार की पीड़ा और व्यथा को भूल जाएगी ? क्या ओस के भीगे हुए फूलों के पत्तों में तू डूब जायगी ? क्या प्रकृति के इन सुन्दर रूपों में उलझकर तू संसार की पीड़ा को भूल जाएगी ? नहीं, ऐसा होगा ! ये सब तो तेरी छाया हैं। तुझे अपनी छाती को ही अपना बन्धन नहीं बना लेना है।

वज्र का उर **उस में बसाना ?**

शब्दार्थ—वज्र का उर=अनेक विपत्तियों को हँसते-हँसते झेलने वाला हृदय। जीवन-सुधा=जीवन का रस, सत्य ज्ञान। मदिरा=मोह या अज्ञान। आँधी=उत्साह, शक्ति। वात=तूफान। उपधान=तकिया। अभिशाप=दुःख। अमरता सुत=अमर।

भावार्थ—तूने कठोर से कठोर विपत्तियों को झेलने वाले हृदय को अपने एक आँसू की बूँद में गला दिया है। तूने जीवन का सत्य ज्ञान किसे दे दिया है और उसके बदले में क्यों मोह की मदिरा माँग लाया है ? क्या मलय-पवन की आँधी के समान तेरी सात्विक शक्ति वायु का तकिया बनाकर सो गई है ? क्या संसार की पीड़ा के शाप को देखकर तुझे यह स्थायी निद्रा ही प्राप्त हुई है ? संसार की व्यथा को देखकर भी तू नहीं जागता। तू अपने इस विपरीत आचरण से क्यों अपने हृदय में मृत्यु को बसा लेना चाहता है ?

कह न   **बिछाना ?**

शब्दार्थ—आग=वेदना। पानी=आँसू, लोक का कल्याण करने वाली करुणा। अङ्गार-शय्या=व्यथा से पीड़ित संसार। मृदुल-कलियाँ=सुख।

भावार्थ—अब तू अपनी बीती हुई विरह की कहानी को मत सुना। असफल प्रेम पर रोने से कोई लाभ नहीं है। प्रेम की असफलता तो जीवन को शक्ति और करुणा प्रदान करती है। जब हृदय में वेदना है तभी तो आँखों में दुःखियों के लिए करुणा का जन्म होता है। और हे मानिनी ! तू पराजय से भयभीत मत हो। तेरी पराजय ही विजय की पताका बनेगी। (उदाहरण के लिए) देख पतिंगा प्रेम में दीवाना होकर दीपक पर जल मरता है। किन्तु उसकी इस पराजय में, इस मृत्यु में भी उसकी सफलता है। उसकी राख ही उसके प्रिय दीपक की अमर निशानी है। तुझे व्यथा से पीड़ित इस संसार पर सुख की कलियाँ बिछानी हैं।

६३

कीर का   **सपने तोलदो ?**

शब्दार्थ—कीर=तोता, मनुष्य। चंचु=चोंच। वेणु=बाँसुरी। पिंजर=पिंजरा। हत=मरे हुए, शक्ति हीन। विभव=शक्ति। शिथिल कारा=निर्बल बन्धन।

भावार्थ—हे प्रिय ! आज तुम बन्धन में पड़े हुए इस तोते का पिंजरा खोल दो। मोह में पड़े हुए मेरे हृदय को ज्ञान दो।

तोते की चोंच के स्पर्श से पिंजरे की सूखी तीलियाँ भी सुरीली बाँसुरी के

समान बन गई हैं। और यह जड़ तथा शान्त पिंजरा भी पीड़ित तथा कम्पित तोते के प्रभाव से सिहर उठा है। हे प्रिय ! आज इसकी जड़ता में वाणी की शक्ति भर दो।

आँसुओं की धारा को दूर कर तोते के निर्बल पङ्खों की सारी शक्ति फिर उसे प्राप्त हो गई है। अब युग-युग से बन्दी तथा अलसाया हुआ यह तोता अपने निर्बल बन्धन को भी साथ लेकर उड़ जायेगा। हे प्रिय ! तुम इसके पंखों पर उसकी मधुर कल्पनाएँ भर दो। अपनी मधर कल्पनाओं के कारण उसके पंखों में और भी शक्ति आ गई है।

क्या तिमिर ` **मोल दो।**

शब्दार्थ—तिमिर=अन्धकार। दूर-खग=दूरी रूपी पक्षी। प्रलय-धन= प्रलयङ्कर मेघ, विपत्तियाँ। राका=पूर्णिमा, आनन्द। चपल-पारद=चंचल पारा। नीरद=बादल।

भावार्थ—आज प्रेरणा इतनी तीव्र है कि अन्धकार और रात्रि का भी कोई ध्यान नहीं रहा है। आज विपरीत दिशा भो सही दिशा बन गई है। आज दूरी की भी कोई चिन्ता नहीं है। क्योंकि दूरी रूपी पक्षी भी आज हमेशा के लिए निकट आ गया है। कोई दूरी-दूरी नहीं रही है। हे प्रिय आज तुम प्रलयङ्कर मेघों में पूर्णिमा मिला दो। इस संधर्ष और दुःख के जीवन में आनंद भर दो।

आज मेरा शरीर चंचल पारे के समान व्याकुल है। मेरा मन बादल के के समान आँसुओं से भरा हुआ है। बन्धनों का माप मेरा यह मन नीले आकाश की व्यापकता को नापने में समर्थ है। हे प्रिय ! तुम अनन्त आशा की एक किरण दे दो।

(यह अन्योक्ति है। प्रस्तुत पक्ष हृदय और शरीर है, अप्रस्तुत कीर और पिंजरा।)

६४

प्रिय **यामिनी में।**

शब्दार्थ—शून्य=आकाश। सजीली साध=मधुर इच्छा। चल दामिनी=

चंचल बिजली । छाँह=चाँदनी । अश्रु=ओस के आँसू । यामिनी=रात्रि ।

भावार्थ—कवियित्री कहती है कि मेरा प्रिय तो शाश्वत है, एकरस है, किंतु मैं प्रतिक्षण नवीन रूप धारण करने वाली सुहागिनी हूँ । (उसे प्रियतम में स्थायित्व दिखाई देता है । एक रसता के दर्शन होते हैं किन्तु स्वयं अपने लिए उसे नवीनता तथा परिवर्तन की ही कामना है ।)

जब वह विराट् बादल मुझे श्वास के रूप में अपने आप में छुपाकर मेरे प्रियतम की मधुर इच्छा के समान आकाश में छा गया, तब भी मैं उसमें छिप नहीं सकी । वह मुझे स्वयं में छिपाने में समर्थ नहीं हो पाया । वरन् मैं तो बिजली के रूप में प्रतिक्षण चमकने लगी ।

ब्रह्म की इच्छा के फलस्वरूप ही उस विराट् सृष्टि का जन्म हुआ है । बादल भी आकाश में अत्यन्त विस्तृत रूप से फैल जाता है । उसकी इस विशालता को दिखाने के लिए ही कवियित्री ने उसकी तुलना प्रियतम की साध से की है ।

हे सखि ! अब मैं अपने प्रियतम की चाँदनी की छाया का अपना वस्त्र बना कर, और अपने एकान्त समय को धरती पर ओस गिराने में बिताकर रात्रि के समान आँसू भरे नेत्र लेकर हँसती हुई प्रातःकाल में छिप गई हूँ । (रात्रि के दृश्य में स्थायित्व या एकरसता नहीं है । रात आती है और चली जाती है । इसमें गति है । नवीनता है। कवियित्री यही भाव प्रदर्शित करना चाहती है ।)

अनुरागिनी मैं !

मिलन-मन्दिर

शब्दार्थ—गुण्ठन=पर्दा, घूँघट । तप्त-सिकता=गर्म रेत । सलिल कण=जल की बूँद । निजत्व=व्यक्तित्व । सुभग=सुन्दर । क्षार=राख । चिन्मय=चेतन । मृण्मयी=मिट्टी की ।

भावार्थ—यदि मैं मिलन के क्षण में अपने सुख का घूँघट उठा दूँ, तो मेरा व्यक्तित्व उसी प्रकार प्रिय में मिल जाए जैसे कि गर्म रेत में पानी की एक बूँद नष्ट हो जाती है। किन्तु मैं तो अभिमानिनी हूँ । मैं किस प्रकार अपने काम्य व्यक्तित्व को मिटाकर प्रिय में मिल जाऊँ ।

मैं चाहे दीपक के समान निरन्तर जलती रहूँ, किन्तु मेरा सुन्दर प्रियतम मुझे केवल इतना कहदे, कि जब मैं उसकी फूँक से बुझ जाऊँ तब राख ही मेरे व्यक्तित्व की निशानी बच जाए। वह मेरा चेतन आराध्य बना रहे, और मैं उसकी मिट्टी की पुजारिन बनी रहूँ।

सजल सीमित

चाँदनी मैं ?

शब्दार्थ—रजकण = धूल के कण। विरज = निर्मल। विधु = चन्द्रमा।

भावार्थ—मेरी आँसू भरी छोटी सी पुतलियों पर न मिटने वाले मेरे उस असीम प्रियतम का चित्र बना हुआ है। मेरा प्राण तो सीमित है, किन्तु उसमें अनन्त कामना का निवास है। भाव यह है कि चाहे मैं नश्वर हूँ, किन्तु मेरा प्रेम अमर है तथा मेरा प्रियतम असीम है। मैं इस धूल में लहराती हुई किस निर्मल चन्द्रमा की चाँदनी हूँ। मेरे व्यक्तित्व का आधार मेरा प्रियतम है। मैं उसी की छाया हूँ और इस संसार में जीवन बिता रही हूँ।

६५

सखि

पुलकें लहरी !

शब्दार्थ—मधुमय=सुख देने वाली वस्तुएँ। प्रस्तर=पत्थर।

भावार्थ—हे सखि ! मैं तो अमर सुहाग से भरी हुई हूँ। प्रत्येक जन्म में मेरा प्रियतम मेरे साथ रहता है, मैं कभी भी उसे नहीं भुलाती। मुझे अपने प्रिय से अनन्त प्रेम है। चाहे कितने ही युग व्यतीत हो जाएँ, किन्तु मेरा प्रेम कभी मिट नहीं सकता।

मेरे लिए तो सुन्दर-असुन्दर, सुख-दुःख दोनों ही एक से हैं। मैं अपने प्रिय से किस की याचना करूँ। मुझे तो मेरा प्रिय जो भी दे देता है, मैं उसे ही स्वीकार कर लूँगी। मेरे चरणों को छूकर काँटे कलियाँ बन जाते हैं और पत्थर भी रसमय हो जाते हैं। यदि मेरा प्रिय मुझे दुःख भी दे तो भी वे मेरे लिए सुख बन जाते हैं। मेरे रोम-रोम में आनन्द की पुलक लहरा रही है, फिर मुझमें संसार के दुःखों के लिए कोई भी स्थान नहीं रहा।

जिसको ... छाया गहरी !

शब्दार्थ—पथ-शूल=प्रेम पन्थ की बाधाएँ । निर्जन गह्वर=एकान्त गुफा । वाहक=वहन करने वाले, लाने वाले । अरुणा=उषा । सीमन्त=मांग । राका= पूर्णिमा की रात्री । रच दीपावली = तारों की दीपावली सजाकर । गहरी= सशक्त ।

भावार्थ—जिसे प्रेम पन्थ की विपत्तियों का भय, हो, वह भले ही एकांत गुफाओं को ढूँढ़े, संसार को त्याग कर दूर जङ्गलों अथवा पहाड़ों में जा बसे, किन्तु मैं तो अपने प्रियतम के सन्देश लाने वाले सुखों और दुःखों को छाती से लगाऊँगी । मुझे इस संसार से नहीं जाना है । करुणा मेरी इन छोटी सी पलकों से ममता कर संसार भर में फैल गई है । मेरे हृदय में विश्वमात्र के लिए प्रेम भरा हुआ है । जंगलों तथा पहाड़ों की गुफाओं में रहने वालों को संसार के कल्याण का तनिक भी ध्यान नहीं होता ।

उषा ने अपनी लालिमा से मेरी माँग भर दी है । सन्ध्या ने मेरे चरणों में महावर लगाया है, पूर्णिमा की रजनी तारों की दीवाली सजा कर मेरे शरीर के लिए उवटन प्रदान करती है । संसार के दुःखों को धो-धोकर मुझे और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है । (संसार के कल्याण के लिए प्रयत्न करने वाले व्यक्ति की मानसिक शक्ति अत्यन्त उर्वर हो जाती है ।)

पद के ... जीवन-गगरी ।

शब्दार्थ—निक्षेप=चाप । रज=धूल । छाया-पथ=आकाश गंगा । रीती=खाली ।

भावार्थ—जब मैं रेगिस्तान में अपने जीवन की खाली गगरी को दुःख से भरने के लिए लाती हूं तो मेरे चरणों की चाप से आकाश गंगा आकाश को छोड़कर धूल में उतर आती है । मेरी प्रत्येक साँस से बादल घिर आते हैं और मेरी सांस से सूखे हुए वृक्ष-पौदे भी लहलहा उठते हैं । (यहां कवियित्री अपने व्यक्तित्व की विराटता का वर्णन करती है ।)

६६

सो रहा है ... जानता है ।

शब्दार्थ—तारक=तारा । कुशल चितेरा=कुशल चित्रकार । मृदुल= कोमल । धूप छाही विरह-वेला=आशा तथा निराशा से भरा हुआ जीवन ।

भावार्थ—सारा संसार सो रहा है पर मेरा प्रियतम नक्षत्रों में जाग रहा है। नियति रूपी कुशल चित्रकार ने मेरे जीवन रूपी पात्र को सुख-दुःख रूपी रंगों से रंग दिया है, मेरे जीवन में सुख तथा दुःख भर दिए हैं।

मैं अपने प्रियतम को प्रेम का अमृत देती हूँ, पर वह तो मुझ से खारे आँसू ही माँगता है। वह मेरे प्रेम को स्वीकार नहीं करता। फलस्वरूप मैं विरह में रोया करती हूं।

मेरा विरह का यह जीवन आशा तथा निराशा से भरा हुआ है। मैं जिसको अकेला ढूँढ़ना चाहती हूँ, वह इस संसार का कोलाहल बना हुआ है। सारे संसार की हलचल उसी मेरे प्रियतम की ही अभिव्यक्ति है। मैं उसे संसार से अलग एकान्त में नहीं देख सकती। वह तो संसार के रूप में ही प्रकट हुआ है। यद्यपि मेरे प्रियतम को मैंने नहीं देखा फिर भी मेरा और उसका सम्बन्ध सनातन है इसीलिए मेरे नेत्र उसकी छाया को पहचान लेते हैं तथा मेरा हृदय उसके चरणों की ध्वनि को जानता है।

रङ्गमय है ठानता है।

शब्दार्थ—रंगमय=आकर्षक। चित्रमय=सुन्दर। सुनहला हास=मधुर हास। घनसार=कपूर।

भावार्थ—हे प्रिय! मेरे और तुम्हारे बीच की यह दूरी आकर्षक है। इस दूरी के नष्ट होते ही मेरा अस्तित्व भी नष्ट हो जायगा। जब तक दूरी है तब तक मेरा अस्तित्व बना हुआ है, तब तक मेरी और तुम्हारी प्रेम क्रीड़ा चलती रहेगी। यदि मैंने तुम्हें छू लिया, मेरा तुम से मिलन हो गया तो प्रेम का यह मधुर खेल अधूरा ही रह जायगा। इसलिए मुझे दूर कर ही खेलना चाहिए। किन्तु मेरा हृदय नहीं मानता। कभी-कभी वह मिलन लिए आकुल हो उठता है।

दिन के समय तुम्हारा स्वर्णिम हास सर्वत्र बिखर जाता है। तुम्हारी उस हँसी से आकर्षित होकर यदि मैं मिलन के लिए चल निकलूँ तो मिलन होते ही मेरा अस्तित्व कपूर के समान ही नष्ट हो जायगा। जब मेरा हृदय मिलन का हठ करता है, तो मैं अपनी आँखें बन्द कर लेती हूँ, तुम्हारी आँखों से ओझल कर देती हूँ। जब तक तुम्हारा हास छिप न जाए, जब तक रात न हो जाए।

मेघ-रुँधा   असमानता है ?

शब्दार्थ—अजिर=आँगन, आकाश । इन्दु-कन्दुक=चाँद रूपी गेंद ।

भावार्थ—पावस ऋतु में मेघों से घिरा हुआ आकाश गीला हो जाता है । प्रभात में चन्द्रमा रूपी गेंद टूट जाती है, चन्द्रमा छिप जाता है । दिन के समय लाल और पीला सूर्य जलता हुआ निकलता है । यह मेरे खिलौने कितने आकर्षक तथा मूल्यवान हैं । और इधर मेरा मामूली हृदय है । मेरे इस हृदय और इन खिलौनों के बीच तो भारी असमानता है ।

६७

[इस कविता में कवियित्री ने हिमालय का अत्यन्त कलात्मक वर्णन किया है । हिमालय का मानवीकरण है ।]

हे चिर महान   कठिन प्राण !

शब्दार्थ—स्वर्ण रश्मि=सुनहली किरण । श्वेत भाल=सफेद माथा, बर्फ से ढकी चोटियाँ । रंगीन हास=सुनहले रंग । सेली=दुपट्टा । परिमल=सुगन्धि । बतास=वायु । रागहीन=आसक्ति प्रेम हीन । हिम-निधान=बर्फ का घर । दीन क्षार=मिट्टी । कुलिश=वज्र, बिजली ।

भावार्थ—हे हिमालय तुम हमेशा के लिए महान हो । तुम से ऊँचा न कोई पर्वत था और न कोई होगा ।

यह सुनहली किरणें तुम्हारी बर्फ ढकी चोटियों को छूकर सुनहले रंग बिखेर जाती हैं । इन्द्र धनुष तुम्हारा दुपट्टा बनता है । वायु तुम्हारे शरीर में सुगन्धि मल जाती है । किन्तु फिर भी तुम्हारे हृदय में आसक्ति नहीं है । इतना वैभव तथा महानता होते हुए भी तुम्हारे मन में आकर्षण नहीं है ।

तुम्हारा सर गर्व से आकाश में तना हुआ है । किन्तु तुम्हारे हृदय में धूल भरी हुई है । तुम्हारा शरीर तो इतना कठोर है कि वह बिजलियों की चोट को तो आसानी से सह लेता है किन्तु संसार को देख कर तुम्हारा हृदय द्रवित हो उठता है । इतने कठोर होते हुए भी तुम्हारा मन बड़ा कोमल है । विपत्तियों को सहने में तुम बड़े कठोर हो किन्तु दूसरे का दुःख देखकर तुम बिल्कुल दीन हो जाते हो ।

टूटी है   विहान !

आगे हिमालय का वर्णन योगी के रूप में किया गया है ।

शब्दार्थ—झंझा=तूफान । जलते कण=जलती हुई धरती, गर्मी से दुःखी संसार । पावस=करुणा । विहान=प्रभात, उत्साह ।

भावार्थ—तू एक योगी है । सैकड़ों तूफान तुझसे टकरा-टकरा कर हार गए किन्तु तेरी समाधि भंग नहीं हुई, तू तनिक भी विचलित नहीं हुआ ; किंतु जलते हुए एक धूल के कण की करुणा पुकार सुनकर तेरे नेत्रों से जल बहने लगता है, गंगा-यमुना आदि नदियाँ बहने लगती हैं । तू सुख से विरक्त है और दुःख में भी समरस रहता है ।

(यहाँ गीता के 'दुखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह—' का प्रभाव स्पष्ट है ।)

आज मैं चाहती हूं कि मेरे जीवन का तेरी छाया से नीरव मिलन हो जाए। मेरा शरीर तेरी साधना को प्राप्त कर ले और मेरा हृदय तेरी करुणा की गहराई की थाह नाप ले । मेरे हृदय में भी करुणा की पावस हो और नेत्रों में उत्साह का प्रभात हो ।

६८

मैं सजग   **आराधना ले ।**

शब्दार्थ—प्रहरी=पहरा देने वाला । निमिष=क्षण ।

भावार्थ—मैं अपनी सनातन साधना लिए हुए प्रियतम की आराधना में सजग हूं । हे सखि ! मेरे रोम निरन्तर जागकर पहरा देने वालों के समान सदैव सजग रहते हैं । समय रूपी सागर में पल रूपी बुलबुले विलीन होगए हैं तथा वह शान्त हैं । अभिप्राय: यह है कि सामान्य व्यक्ति को सयय की विषम गति का—सुख-दुःखमय क्षणों का—ज्ञान होता है । किन्तु निरंतर साधना में लीन रहने वाले को समय की गति का भान नहीं होता । कवियित्री कहती है कि मैं विरह की आराधना करते-करते ही प्रियमय हो गई हूँ । मुझे प्रिय के विरह में भी प्रियतम से मिलन की अनुभूति होती है ।

मूँद पलकों में   भावना ले ।

शब्दार्थ—अचंचल=स्थिर, शान्त । नयन का जादूभरा तिल=प्रेम भरी पुतली । अलख=अलक्ष्य । अविकल=शान्त ।

भावार्थ—मैं अपने शान्त नेत्रों में प्रेम भरी पुतली को स्थिर कर अपने अलक्ष्य शान्त प्रिय को अपना मधुर रूप धीरे-धीरे अर्पण कर रही हूं । हे प्रिय ! मुझे आज वही वर दो कि मुक्ति भी बन्धन की कामना लेकर आए । इस जीवन बन्धन के सुख को मुक्ति भी अपने लिए काम्य समझे । बन्धन का सुख मुक्ति के सुख से अधिक काम्य तथा स्पृहणीय है ।

आज मुझे विरह का यह दीर्घकाल मिलन एक पल के समान दिखाई देता है । विरह का दीर्घकाल अत्यन्त अल्प भी मालूम होता है और उसी में मुझे मिलन की सुखानुभूति भी हो रही है । दुःख और सुख में कौन सा भाव अधिक तीव्र तथा पीड़क है मैंने इस बात को न समझ पाया है, न सीख पाया है । मेरे लिए सुख दुःख दोनों समान हैं । प्रिय की भावना में, प्रियतम के प्रेम की साधना में मेरे लिए सभी कोमल तथा कठोर भाव मधुर ही हो गए है ।

६९

अलि   आख्यान चली !

शब्दार्थ—अलि=सखि । हीरक जल=हीरे के समान स्वच्छ जल, आँसू । इन्द्र धनुष करते=उल्लोस का सृजन करते हैं । मुक्ताहल=मोती, जल की बूँदें । सुख आख्यान=सुख की कहानी ।

शब्दार्थ—हे सखि ? अब मैं इस संसार के कण-कण से परिचित हो गई हूँ । अब मैंने संसार में सबका विलाप समझ लिया है ।

यहाँ के कुछ लोगों के आँखों में आंसू भरे होते हैं । कुछ के नेत्रों में इन्द्र-धनुष के समान आकर्षण और वैभव की छाया होती है । और कुछ व्यक्ति अपनी कल्पनाओं में असफल होकर आँसू बहाते हैं । उनके आँसू सपनों के टूटे हुए मनकों के समान उनके सूखे ओठों पर गिरते हैं ।

जिन मोतियों से बादल भरे हुए हैं, जो ओस के मोती रात के समय तारों से तिनकों पर उतरा करते हैं, मैं उन सब का रहस्य जान चुकी हूँ; उसके अति-

रिक्त मैंने आकाश, धूल, रस, विष तथा आँसू का भी सब रहस्य जान लिया है। मैंने दुःख को सुख की कथा बना दिया है। विरह की वेदना ही मेरे लिए सम्पूर्ण सुख है।

जिसका **वरदान चलो !**

शब्दार्थ—दंशन=डन्क। जर्जर=दुर्बल। मानस=हृदय। आहत=घाव-युक्त। फूलों का स्पनन्दन=फूलों का नृत्य। कण्टक=काँटा विपत्ति।

भावार्थ—उपवन के काँटे की चुभन से अङ्ग सिहर उठते हैं। वह फूलों के नृत्य के कारण कोमल दिखाई देता है तथा एकान्त मार्ग का काँटा पाँव में चुभकर मन को आहत कर देता है।

और वह अकेला होने के कारण तेज है। मैं उपवन के कारण निर्जल मार्ग के प्रत्येक काँटों का रहस्य समझ चुकी हूँ। और मैं इस संसार को अबाधित गति का वरदान देकर जा रही हूँ। यह सिखा रही हूँ कि सब प्रकार की बाधाओं के होते हुए भी हिम्मत नहीं हारनी चाहिए तथा निरन्तर मार्ग पर बढ़ते जाना चाहिए। (इस छन्द में क्रमालङ्कार है।)

जो जल **लयवान चली !**

शब्दार्थ—विद्युत प्यास=बिजली को प्यास। आतप=धूप। मरु=रेगिस्तान। उर्वर=उपजाऊ भूमि।

भावार्थ—मेघ में धूल के कण होते हैं। कवियित्री कहती है कि रेगिस्तान अथवा मरुभूमि के कण जब मेघ में होते हैं तो वे बिजली के लिए प्यासे होते हैं। धूल के कण निरन्तर तप-तप कर पवित्र हो जाते हैं। झरते हुए फूलों को यही प्रेम से गले लगाते हैं तथा चन्दन के समान उन पर फैल जाते है। आँसू से धुल-धुलकर ये कण उज्ज्वल हो गये हैं। मनुष्यों के निष्ठुर चरण उन्हें हमेशा कुचला करते हैं। मैं मरुभूमि तथा उर्वर भूमि के पीर भरे प्रत्येक अणु का कम्पन समझ चुकी हूँ, उसके प्रत्येक रहस्य से अवगत हो चुकी हूं। और अपने प्रत्येक पग को संगीत की लय के समान आगे बढ़ाती रही हूँ।

नभ मेरा **निर्माण चली।**

शब्दार्थ—नभ मेरा सपना स्वर्ण-रजत=दिन के समय आकाश पर सुनहला

प्रकाश होता है और रात को चाँदी के समान सफेद, ऐसा आकाश मेरा सपना है। साधों=इच्छाओं। दिव=स्वर्ग, दिन।

भावार्थ—दिन के समय सुनहले प्रकाश से सुशोभित तथा रात्रि के समय चाँदनी से युक्त यह आकाश ही सपना है। इसका निर्माण मैंने ही किया है। और यह सारा संसार मेरा चिर परिचित साथी है। काँटों तथा फूलों से–दुःखों तथा सुखों से युक्त यह मार्ग मेरी इच्छाओं से बना हुआ है। मैं अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए इस मार्ग पर चली हूं। (इसलिए मार्ग को इच्छाओं से निर्मित कहा है)।

मेरी इन आँखों के आँसुओं से भीगी हुई धूल भी स्वर्ग से अधिक गर्वीली है। मैं सुख के कारण चंचल बने जीवन को, तथा व्यथा के भार से दबे हुए जीवन को भली भाँति समझ गई हूँ। मैंने अपने मिटने के लिए इस प्रेमपथ का निर्माण किया है।

७०

मोम सा गल चुका है !

शब्दार्थ—शिथिल पग=थके हुए चरण। निर्निमेषी=अपलक। तिमिर-वेषी=अन्धकार में लीन। अज्ञात देशी=अनजान।

भावार्थ—इस कविता में मरण का रहस्यात्मक वर्णन है।

कवियित्री कहती है कि मेरा शरीर मोम के समान घुल गया है तथा मेरा मन भी दीपक के समान जल चुका है। अब न तो शरीर में शक्ति ही रही है और न ही मन में चेतना।

विरह के रङ्गीन क्षणों को तथा आँसुओं के बचे हुए जल-कण को लेकर वरुनियों में उलझ कर टूटे हुए सपनों के गन्धहीन फूलों को लेकर मेरा थका विश्वास रूपी दूत प्रिय की खोज में निकल चुका है। मेरे अन्तिम श्वास में भी विरह के आँसू तथा बिखरे हुए स्वप्नों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

पहले मेरे पलक बड़े चंचल थे, किन्तु आज वे स्तब्ध हैं। कल्प और क्षण सब अन्धकार में लीन हो गए हैं। मुझे अब समय का ध्यान नहीं रहा। पहले

मेरा हृदय नित्य धड़कता रहता था। किन्तु आज उसके लिए धड़कन अनजान होगई है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह कभी जीवित था ही नहीं। मेरी चेतना का सोना वेदना की जलती हुई ज्वाला में गल चुका है। मेरा जीवन विरह में समाप्त हो चुका है।

झर चुके **ढल चुका है ?**

शब्दार्थ—तारक-कुसुम=तारे रूपी फूल। रश्मियों के रजत पल्लव= =किरण रूपी सफेद पत्ते। सन्धि=मिलन। याम=पहर।

भावार्थ—प्रभात के समय जब प्रकाश तथा अन्धकार के मिलन की बेला में तारे रूपी फूल झर जाते हैं, चाँद की किरणों रूपी पत्ते मुरझा जाते हैं, तब क्या आकाश नहीं जानता कि उस पार से दिन का बासन्ती रथ चल पड़ा है ? दिन होने वाला है ?

मृत्यु के समय चेतना तथा अन्धकार का मिलन होता है, सब स्वप्न झर जाते हैं, तो उस पार से आत्मा को लेने के लिए रथ आता है।

व्यंजना द्वारा पतझर के पश्चात् बसन्त के आने की ओर भी संकेत है। वृद्धावस्था के पश्चात् नवीन जीवन की प्राप्ति पतझर के पश्चात् बसन्त के आगमन के समान ही है।

जो अज्ञात पुरुष दीपक को जलाकर उससे यह कह गया है कि तू अन्धकार में अपने पांव आगे बढ़ा, अन्धेरे में ही प्रकाश फैलाता जा, तो रात को प्रकाशित करने वाले उस दीपक को परिश्रम के कारण धूमिल देखकर उसका बुझना समीप जान क्या वही आकर यह नहीं कहता कि अब तेरा अन्तिम पहर समाप्त हो रहा है। अब तेरे जीवन का अन्त होने वाला है।

उसी प्रकार जिस अज्ञात प्रियतम ने जीवन दिया है वही अन्त की बेला निकट आने पर यह भी बताता है कि तुम्हारा जीवन अब समाप्त होने वाला है। (जीवन का गतिमान होना अन्धकार में पग बढ़ाने के समान ही है।) कोई यह नहीं जानता कि जीवन का वास्तविक लक्ष्य क्या है। सभी अन्धेरे में चले जा रहे हैं।

अन्त हीन **मचल चुका है !**

शब्दार्थ—विभावरी=रात। अंगारक=तरी अंगारों की नाव। तिमिर की

तटिनी=अन्धकार की नदी। सुधि पतवार=स्मृति रूपी पतवार। बिछल चुका है=गिर चुका है। इंगित=इशारा।

भावार्थ—रात का कोई अन्त नहीं है मेरे पास केवल वेदना के अंगारों की नाव है। उधर अन्धकार की नदी ने क्षितिज की रेखा भी डुबो दी है। किनारा भी दिखाई नहीं देता और अलसाए हुए हाथ से स्मृति का सुन्दर पतवार गिर गया है।

कोई नहीं जानता कि मृत्यु के पश्चात किधर जाना है, जाने के साधन क्या हैं। नाव अग्नि की है, पतवार है नहीं, कुछ दिखाई देता नहीं, किनारा भी डूब गया है, क्या पता कहाँ जाना है ?

ऐसे समय कवियित्री प्रश्न करती है कि अब तुम्हारा क्या सन्देश है ? अभी और भी कोई विशेष वेदना की ज्वाला भोगनी है ? अथवा क्या इस भयङ्कर मार्ग के उस पार चन्दन तथा चाँदनी का बना हुआ शीतल तथा सुखद देश है ? हे प्रिय ! बस तुम्हारा एक इशारा ही पर्याप्त है। तुम्हारे एक इशारे के लिए ही मेरा प्राण सैकड़ों बार मचल चुका है।

७१

पथ मेरा **सन्धान बन गया !**

शब्दार्थ—विद्युत लोक=बिजली का संसार, प्रसन्नता का संसार। रेणु=धूल। हिम तरल=शीतल तथा चंचल। उफान=तूफान। अन्जन-वेदना=काले मुख वाली, अन्धकार से घिरी हुई। चित्रित अवगुण्ठन=रंगीन वस्त्र, रंग-बिरंगे मघों का वस्त्र। मरकत वीणा=नीलम की वीणा, अन्धकार की वीणा।

भावार्थ—मेरा मार्ग ही मेरे लिए निर्वाण हो गया है। मेरा प्रेम का मार्ग तथा विरह की वेदना ही मेरे लिये निर्वाण के समान सुखपू ं तथा रमणीय है। और इस मार्ग पर पड़ने वाला मेरा एक-एक कदम सैकड़ों वरदानों के समान आनन्द दायक है।

आज थके हुए चरणों ने निराशा के सूने अन्धकार में आशा तथा आनन्द का एक नवीन लोक निर्माण किया है। मेरी धुँधली छाया से चाँदनी की धूल

के समान शान्ति और करुणा बरस रही है। आज प्रलय के भयङ्कर मेघ भी गलकर शीतल तथा चंचल आँसुओं के रूप में बदल गये हैं। आज भयङ्कर विपत्तियाँ भी सरल हो गईं हैं।

मेरे इस हर्ष के क्षण पर सारी प्रकृति भी हर्षोत्फुल्ल है। अज्ञान तथा निराशा की रात बीत गई है और आनन्द का वैभव सर्वत्र फैल रहा है।

काली दिशाएँ चकित हो गईं और उन्होंने प्रभातकाल में रंगीन बादलों का सुन्दर वस्त्र पहना है। रात ने अपनी नीलम की वीणा पर सुनहली किरणों के तार सँभाल लिए है। प्रभात बेला में पक्षियों का संगीत गूँजने लगा है। मेरे कम्पन से तूफान का भयङ्कर गर्जन मधुर संगीत में बदल गया है। जब पथ में प्रियतम की प्राप्ति हो गई तब निराशा की रातें बीत चुकी हैं, और ऊषा का सुनहला प्रकाश फैल गया है।

पारद सी पहचान बन गया।

शब्दार्थ—पारद=पारा। चन्दन चर्चित=चन्दन के लेप से युक्त। अंग-राग=चन्दन। मधुपर्क=सुगन्धि, आनन्द। निमिष=पलक।

भावार्थ—कठोर शिलाएँ भी द्रवित होकर पारे के समान हो गईं। आकाश चन्दन से युक्त आँगन के समान आकर्षक दिखाई देने लगा। पुष्परज मेरे लिए चन्दन और कपूर बन गई। धूप सुगन्धि का आलेप हो गई और शूलों की पीड़ा मेरे लिये कलियों की सुगन्धि के समान हो गई। आनन्द में सारी प्रकृति ही शीतल, हर्षित तथा रमणीक दिखाई देने लगती है।

आज मेरी प्रत्येक साँस मिलन तथा विरह की सैकड़ों कथाएँ लिख रही है। मेरे पलक अपने अस्तित्व को मिटाकर किन्हीं अनजान चरणों की रेखा बन रहे हैं, प्रियतम के पद-चिन्ह देख रहे हैं। मैंने जो एक क्षण भर के लिए तुम्हारा स्वप्न देखा था, वह मेरी तथा तुम्हारी सनातन पहचान बन गया है।

देते हो प्राण बन गया।

शब्दार्थ—पाहुन=अतिथि।

भावार्थ—तुम मेरी हँसी को करुणा के आँसुओं से भरकर लौटा देते हो और मेरे आँसुओं को तुम अपनी हँसी से आकर्षक बना देते हो। मेरे आँसुओं में तुम्हारी हँसी है, और मेरी हँसी में तुम्हारे पिए हुए करुणा के आँसू। आज

मेरा अतिथि प्राण तुम्हें छूकर मृत्यु का दूत बन गया है। संसार में नश्वरता का सन्देश दे रहा है।

७२

हुए शूल **औ दिन।**

शब्दार्थ—शूल=काँटे। अक्षत=चावल। छबीले=अनेक वर्ण वाले। हसित=प्रसन्नता देने वाले। कण्टकित=दुःख देने वाले। असित=काले। पुरातन=प्राचीन।

भावार्थ—आज इस विरह-वेदना की तीव्रता में मेरे दुख भी सुख बन गए हैं। मेरे विपत्ति रूपी काँटे मेरी पूजा के चावल बन गए हैं। मेरे शरीर की धूल चन्दन बन गई है।

मेरी साँस अगरबत्ती के धूम के समान ही स्मृति रूपी सुगन्धि से भरी हुई है। मेरे प्रेम की लौ शान्त आरती बन गई है। और मेरे नेत्रों का आँसू अभिषेक का जल बन गया है।

सुनहले, सुन्दर, अनेक रंगों वाले, प्रसन्नता देने वाले, दुःखपूर्ण तथा आँसू रूपी पुष्परस से युक्त मेरे स्वप्न रूपी असंख्य फूल बिखरते रहते हैं।

जो सृजन तथा प्रलय के सफेद तथा काले गन्धर्व हैं, जा हृदय के लिए अपरिचित होते हुए भी नेत्रों के लिए अत्यन्त प्राचीन हैं, वही दिन और रात मुझे पुजारी मिले हैं।

परिधिहीन **नाश के क्षण ?**

शब्दार्थ—परिधि हीन=असीम। चरण-पीठ=चरण धरने की चौकी। स्वन=शब्द। वरद=वरदान देने वाली।

भावार्थ—अनेक वर्ण के मेघों से भरा हुआ असीम आकाश ही मेरा मन्दिर है। धरती का करुण हृदय ही मेरे चरणों की चौकी है। सागर की आवाज में शंख की ध्वनि है। (भगवान का मन्दिर होता है। उसके चरणों के नीचे चौकी होती है तथा मन्दिर में शंख बजा करते हैं।)

यह मत कहो कि मुझे कोई प्रलय के द्वार पर रोक लेगा, प्रलय मेरा अन्त कर देगी। मैं तो स्वयं वर देने वाला हूँ। मुझे कोई दूसरा क्या

अमरता का वर देगा ? क्या सुगन्धि को फूल अपने आप में बाँधकर रख सकता है ?

मैं व्यथा से भरा हूँ किन्तु फिर भी सुख का निवास मैं ही हूँ। जिसने दुःख नहीं देखा वह सुख को क्या पहचानेगा और दूसरों को कैसे सुख देगा ? मैं आग में घुला हुआ मोम का देवता हूँ। चाहे मैं मोम का हूँ किन्तु आग भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। फिर मैं सृष्टि बनकर क्यों नाश की ओर बढ़ूँ ?

७३

वह .... पलने दो !

शब्दार्थ—नीरव=चुपचाप। रजत=चाँदी जैसे सफेद। उपल=पत्थर। इष्ट= आराध्य। अजिर का सून्य=आँगन का सूनापन। अलिन्द=घर के बाहरी द्वार के सामने का चबूतरा। प्रणतशिरों के=झुके हुए सिरों के। अर्चित-कथा=पूजा की कहानी।

भावार्थ—कवियित्री कहती है कि मेरी साधना के दीपकों को मेरे प्रियतम के मन्दिर में चुपचाप जलने दो। कुछ समय पहले जब आरती हुई थी तो चाँदी जैसे सफेद शंखों तथा घड़ियालों की आवाज तथा सुनहली वंशी तथा वीणा के संगीत से सारा वातावरण गूँज उठा था। तब यहाँ पर नर-नारियों के मधुर कंठ का संगीत गूँज रहा था। उस समय के संगीत से प्रभावित होकर पत्थर भी हँस उठे थे तथा प्रकाश की किरणों में अन्धकार अठखेलियाँ कर रहा था। किन्तु उस आरती की बेला बीत गई है। मन्दिर में देवता अकेला है। मेरे इस दीपक को ही आँगन का सूनापन दूर करने के लिए जलने दो।

थोड़ी देर पहले मन्दिर के बाहर के सुनहरी चबूतरे पर अनेक नर-नारियों के चरणों के चिन्ह अङ्कित थे। चन्दन की देहली में झुके हुए असंख्य सिर थे। देवता के ऊपर फूलों की वर्षा हुई थी, सफेद अक्षत चढ़ाए गए थे, अपरिमित धूप, अर्घ्य, तथा नैवेद्य चढ़ाया गया था। किन्तु थोड़ी देर पश्चात् ही सब अन्धकार में लीन हो जाएँगे। इसलिए सब की पूजा की कहानी को इसी दीपक में

संचित रहने दो। इस दीपक को जलता हुआ देखकर ही आरती तथा पूजन आदि की कल्पना की जा सकती है।

पल के   चलने दो !

शब्दार्थ—पल के मन के फेर पुजारी=हे मन, एक-एक क्षण गिन-गिन कर काट। प्रस्तर=पत्थर। मसि-सागर=स्याही का सागर, मार्ग अन्धकार में लीन हो गया। दिग्भ्रान्त=दिशा ज्ञान का अभाव। लघु प्रहरी=छोटा चौकीदार। रेखा=किरण।

भावार्थ—हे मन रूपी पूजारी ! सारा संसार सो गया है। अब तू क्षणों की माला फेर, एक-एक पल गिन-गिन कर काट। जागरण के समय बड़ा कोलाहल था। जब वह पत्थरों से टकराता था तो प्रतिध्वनि होती थी। जब सब सो गए तो प्रतिध्वनि भी पत्थरों में लीन हो गई। जीवन साँसों की समाधि के समान दिखाई दे रहा है। सारे प्राणी चुपचाप स्थिर होकर बस साँसें ले रहे हैं। मार्ग स्याही के सागर सा बन गया है—कुछ भी दिखाई नहीं देता। और दिन के समय जो कण-कण में कम्पन हो रहा था वह बन्द हो गया। अब फिर से इस ज्वाला में प्राणों को जलने दो, इसे जीवन की कहानी कहने दो।

रात के इस घने अंधकार में तूफान भी पथ भ्रष्ट हो गया है। रात पूर्णतः बेसुध है। आज प्रकाश के इस छोटे चौकीदार को पुजारी बन जाने दो। इसके प्रकाश में कोई अपना मार्ग ढूँढ़ ले। जब तक दिवस की हलचल लौट नहीं आती तब तक मेरी साधना का यह दीपक निरन्तर जलता रहेगा और अपनी किरणों में प्रकाश का पानी भरकर बिखेरेगा। यह दीपक संध्या का दूत है इसे प्रभाती तक सफर करने दो।

७४

पूछता क्यों   एकाकिनी बरसात।

शब्दार्थ—अमर सम्पुट=अविनश्वर जीवन। कज्जल-दिशा=काली दिशा, अन्धकार। परिधि = घेरा। अवदात = सफेद। खद्योत=जुगुनू। तिमिर-

वात्याचक्र=अँधकार का तूफान। पवि=वज्र। विद्युत शिखा=बिजली की ज्वाला।

भावार्थ—हे मेरी साधना के दीपक! तू यह क्यों पूछता है कि कितनी रात शेष बची है। तुझे तो अमर जीवन प्राप्त है। तू जिनके नखों की शोभा को छूकर जिनके संकेत से जला है, और जिनकी मधुर स्मृति लेकर तू इस अँधेरी रात में बढ़ता चला जा रहा है, वे ही सफेद उँगलियाँ तुझे घेरे हुए हैं।

सारे जुगुनू छिप गए। रात के इस तूफान में सारे तारे भी छिप गए हैं। वज्र के हृदय में बिजली की ज्वाला भी काँप कर बुझ गई है। अकेली बरसात तेरे साथ की कामना करती है।

व्यङ्गमय **बात!**

शब्दार्थ—ज्वालावाही=ज्वाला को वहन करने वाला। छीजता=मलिन होता। भारती=वाणी। प्रलय झंझाबात=प्रलयङ्कर तूफान।

भावार्थ—आज आकाश तुझ पर व्यंग करता दिखाई देता है। प्रत्येक कण तुझ से यह प्रश्न कर रहा है कि तेरा परिचय क्या है, तेरा बसेरा कहा है? आज ज्वाला को वहन करने वाला तेरा श्वास, तेरी लौ ही सब के प्रश्नों का उत्तर दे। नित्य जलते रहना यही तेरा परिचय है। इधर तू जल-जल कर मन्द पड़ता जाता है, और इधर प्रातःकाल निकट आ रहा है।

तू भय मत कर। यदि प्रलयङ्कर तूफान भी आता है तो तू अपनी झुकी हुई लौ की आरती लेकर, नीला कुमकुम तथा सुनहले अक्षत वारती हुई धूम लेखा लेकर, और शान्त हृदय में प्रेम से उज्ज्वल पीड़ा की कहानी लेकर उनसे मिल। तुझे तूफानों से भयभीत नहीं होना चाहिए।

यहाँ मिलन की आशा का चित्र अंकित है।

आलोचनात्मक अध्ययन : प्रश्न और उत्तर में

१.	सूरदास	—वासुदेव शर्मा शास्त्री	२.५०
२.	तुलसीदास	—प्रो० भारतभूषण 'सरोज' एम०ए०	२.५०
३.	बिहारी	,, ,,	२.५०
४.	जायसी	,, ,,	२.५०
५.	भाषा विज्ञान	,, ,,	२.५०
६.	साहित्यालोचन	,, ,,	२.५०
७.	उद्धवशतक	,, ,,	२.५०
८.	कामायनी	,, ,,	१.००
९.	साकेत	,, ,,	१.५०
१०.	प्रियप्रवास	,, ,,	१.००
११.	आधुनिक तीन महाकाव्य [कामायनी, साकेत और प्रियप्रवास तीनों पुस्तकें एक ही जिल्द में]		३.५०
१२.	प्रेमचन्द	—श्री राजनाथ शर्मा एम० ए०	२.५०
१३.	कबीर	,, ,,	२.५०
१४.	निराला	,, ,,	२.५०
१५.	ग़बन (प्रेमचन्द)	,, ,,	१.२५
१६.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	,, ,,	२.५०
१७.	हिन्दी भाषा का इतिहास	,, ,,	२.५०
१८.	गोदान	,, ,,	२.५०
१९.	कवि प्रसाद	—डा० शम्भूनाथ पाण्डेय	२.५०
२०.	गद्यकार प्रसाद	,, ,,	२.५०
२१.	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	—श्री रामजीलाल एम० ए०	२.५०
२२.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	—डा० द्वारिकाप्रसाद	३.००
२३.	विद्यापति	—श्री मुरारीलाल 'उप्रैती' एम०ए०	२.५०
२४.	चन्द्रगुप्त	—डा० शम्भूनाथ पाण्डेय	२.५०
२५.	भ्रमरगीत-सार	—डा० राम गोपाल शर्मा 'दिनेश'	२.५०
२६.	विनय पत्रिका	,, ,,	२
२७.	शकुन्तला नाटक	,, ,,	१
२८.	पृथ्वीराज रासो	—प्रो० ओम दीक्षित एम० ए०	२.
२९.	केशवदास	—जयकिशन प्रसाद एम० ए०	२

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा